फाँसी

लेखक

जैनेन्द्रकुमार

P.
फाँसी
लेखक
जैनेन्द्रकुमार

फाँसी

लेखक

श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशक

सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

द्वितीय	सन्	मूल्य
संस्करण	१९३३	बारह आने

मुद्रक
श्रीप्रवासीलाल वर्मा मालवीय
सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

आत्म-निवेदन

ये तीन कहानियाँ हैं। इन कहानियों को लिखे दिन हो गए। छपे भी दिन हो गए। यह नया संस्करण होता है, तो मैं कुछ शब्द अपने कहे देता हूँ।

दिन बेकाम नहीं आते, बेकाम नहीं जाते, कुछ कर ही जाते हैं। उस काम को एक अच्छा कह देगा, दूसरा बुरा कह सकेगा। यह सब देखने का प्रश्न है। भविष्य की ओर जो देखते हैं, उनके निकट वर्तमान का कार्य विधायक है। अतीत की ओर देखते रहने से वही वर्तमान अतीत का

जूठन लगने लगता है। सही यह है, कि अतीत और भविष्य दो नहीं; किन्तु दो न मानें, तो हमारी बुद्धि के सामने से जीवन का अर्थ ही लुप्त हो जाय। वर्तमान खो जाय और हम जी न सकें। काल हमारी बुद्धि का परिमाण है। हम समग्र नहीं देख सकते, उसे खण्डित करके देखते हैं; क्योंकि हम खण्ड हैं। इसीसे बालक देखता है, दिन आदमी को बुड्ढा कर देते हैं और वृद्ध मानता है, दिन पाने से आदमी पकता है। दोनों ठीक हैं। बालक सपनों में जीता है, वृद्ध स्मृति में जीता है; पर, दिन अपना काम दोनों से अधिक जानते हैं। वह जनमाते भी हैं और पका-बुढ़ा कर समाप्त भी करते हैं। उत्पत्ति-समाप्ति के समन्वय में से उनका काम बनता है। उस काम की आलोचना, बड़े लोग करें, मुझे ख़तरनाक लगती है। ख़तरे से ख़ाली यह कह देना है, कि दिन अन्तर डाल जाते हैं।

ये कहानियाँ जहाँ हैं, उनमें कई बरस के अन्तर पर मैं आज हूँ। इन बरसों के दिनों ने मुझ में अन्तर किया है। कह लीजिए, मैं अशक्त होने लग रहा हूँ। और, तबीयत हो तो, कह दीजिये, मैं परिपक्व हो रहा हूँ। यह सही है, कुछ खोकर कुछ बन रहा हूँ। यह औरों का काम है, देखें, क्या खो रहा हूँ, क्या नया ला रहा हूँ। मेरा काम अपनी नियति के अनुसार बदलते जाना है। यह कर सकता हूँ, तभी तक जीता हूँ और क्योंकि इसी क्षण में मुर्दा हो जाने लायक़ नहीं हूँ, मैं कहूँगा, मैं नहीं हूँ, फिर भी बदल गया

हूँ। इन कहानियों में मैं अपने को खूब अच्छी तरह, और खूब प्रसन्न प्रेम के साथ पहचानता हूँ। कभी न कहने दूँगा, इन्हें और कोई लिख सकता, और अन्तिम क्षण तक कहूँगा, मैंने लिखीं। फिर भी कहूँगा, जी को आज अच्छी तरह भाता नहीं है। आज मैं उन्हें न लिखना चाहूँगा, न लिख पाऊँगा। जी कुछ और चाहता है। कसरती, कल्पना का आस्मानी 'रोमांस' नहीं चाहता ; घास के किल्ले, जो भींगी धरती में अपने घूँघट में से उँझक कर, एक प्रातः-काल, अनायास, उत्सुक, खिलती धूप देखने लगते हैं और फिर क्षण होते-न-होते एकाएक-ही युद्ध के लिए जाते हुए योद्धाओं के असंख्य बूटों के तले कुचलकर वहीं रह जाते हैं—कुछ वैसा कोलाहल-शून्य मूक 'रोमांस' भी चाहता है। जगमग नहीं चाहता।

सोचा था, इसी ढंग का कुछ और इस संग्रह में लिखकर दे दूँगा; पर नहीं, होता नहीं। कोशिश करके पुराने दिन ला सका, और उनके बीच में कुछ देर बैठ सका, तो इच्छा है, कुछ और तीखा लिख दूँ। जड़ता भंग करने के लिए तीखापन अधिक उपयोगी है।

पुस्तक में किसी कहानी का नाम 'फाँसी' नहीं है; किंतु पहले प्रकाशक ने इसका नाम फाँसी रक्खा, और यही नाम परिचित हुआ। अब यही नाम रहने दिया जा रहा है।

कहानियाँ कुछ छू दी हैं। कहीं कुछ परिवर्द्धन भी हैं। गति जहाँ अपने ही जोर में बल-सी खा रही थी, वहाँ उसे तनिक मद्धिम किया गया है। बस, और यह सब कुछ इस तरह किया गया है कि कहानियों की आत्मा और मूल रूप पर तनिक भी आरोप और विकार न आए।

जब कहानियाँ लिखी गईं, साहित्य के नाम पर न मैं कुछ जानता था, न मुझे कोई जानता था। फिर भी ये साहित्य-समीक्षकों के निकट अस्वीकृत और तिरस्कृत नहीं हुईं। मैंने इससे बड़ा उत्साह पाया; किन्तु मैं चाहता हूँ, मेरी तरह वे इनसे अतृप्त बन उठें। और हम सब मिल-कर हिन्दी वालों से उज्ज्वल और उज्ज्वल-तर वस्तु की माँग करें।

पहाड़ी धीरज, दिल्ली
६-१०-३३

जैनेन्द्रकुमार

फाँसी
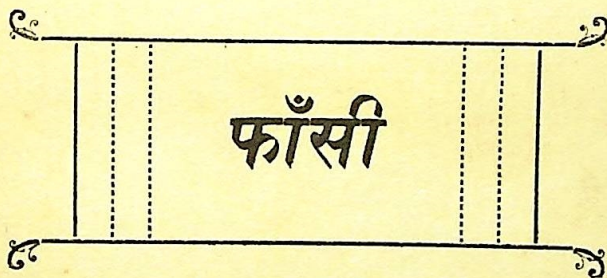
ग़दर के बाद

सन '५७ में हिन्दुस्तान ने लाल दिन देखे। तब धरती पर ख़ून बहा, और आसमान पर उछल-उछल आया। उन्हीं दिनों की बात है—

[१]

जेल के क़ैदी छुड़ाकर, डाकख़ाना फूँककर, और ऐसे-ही और काम करके मेरठ की चिनगारी दिल्ली में

आगई है। यहाँ जो बहुत दिनों से भड़क उठने लायक सामान इकट्ठा किया जा रहा था, वह अब भड़क उठने को तैयार हो रहा है।

···थ् इन्फ़ण्ट्री के अफ़सरों को फ़ौज ने जवाब दे दिया है। उन्हें भाग जाना चाहिये, नहीं तो उनकी ख़ैर की फ़ौज ज़िम्मेदार नहीं। अभी भाग जाने का वक्त़ है, जैसे-बने जान बचा लें, नहीं तो आग लग पड़ी तो ठीक-ठिकाना नहीं रहेगा।

यह चेतावनी लेकर···थ् के कर्नल···बँगले पर आये। वक्त़ पर जो ख़बर मिल गई है, उससे ज़रूर फ़ायदा उठा लेना चाहिये। वह अब भागने की तैयारी में लगे। लेकिन, ···लेकिन मिसेज़···? वह कहाँ गई? उन···पादरी के यहाँ गई होंगी। बच्चा भी उनके साथ है। सोचा—वहाँ से उन्हें झटपट लाकर भाग चलें।

लेकिन तभी एक आर्टिलरी के एडजुटेण्ट घबड़ाये-से बँगले में आये।

'ओह, कर्नल! यों मत बैठो, भाग चलो! बलवाई बढ़ रहे हैं···तक आगये हैं!'

उस···तक की बात सुनकर तो कर्नल हताश होगये। तो अब पादरी के यहाँ पहुँचा नहीं जा सकेगा। बीच में बलवाई मिलेंगे। क्या किया जाय?

एडजुटेण्ड ने ताड़ लिया—क्यों—तुम्हारी···?

'उस···पादरी के गईं मालूम होती हैं।'

'ओ, वहाँ! वहाँ का तो रास्ता रुका हुआ है।'

एडजुटेंएट के मशवरे ने अंत में काम दिया, और उनकी निज की सहज-बुद्धि (common sense) ने भी।—हाँ, देखो, एक जान के पीछे दो जान क्यों गँवाई जाँय? वह बच गईं, तो अच्छा ही है, उधर वह ढूँढ़ने जाकर ख़तम हो गये, तो कुछ बात न हुई।

इस तरह एडजुटेंएट, कर्नल, और कुछ अँग्रेज़ और मेमें—जो बना समेट--समाटकर, जो बचे, उन्हें परमात्मा के और अपनी प्रार्थना के ऊपर छोड़कर, ख़ैर मनाते-मनाते भाग चले।

[२]

पादरी के यहाँ जब मिसेज़···को···थ् इन्फ़ैएट्री के बाग़ी हो जाने की ख़बर मिली, तो वे पति के सोच में व्यग्र हो उठीं। न-जाने क्या हो गया हो! एक नेटिव नौकर को साथ लेकर बँगले पर पहुँचीं। राह में, हवा में किसी उपद्रव की मर्मराहट-सी तो जान पड़ी, पर व्याधि कोई सामने नहीं आई।

लेकिन बँगला ख़ाली था।

तब बच्चे को छाती से चिपटाकर, जो बड़ी-बड़ी आँखों

से यह सब देख रहा था, जिधर पता मिला वह गये हैं, उधर-ही चलदी।

[३]

....चौधरी ने अँग्रेज़ी फ़ौज में नौकरी की थी। पर ख़ून बहाना अपना काम बनाना उसे अखरने लगा। उसने वह नौकरी छोड़ दी। ख़ून तो पवित्र चीज़ है, वह क्या उस तरह बहाने के लिये है ? वह देने के लिये है, लेने के लिये नहीं। ऐसी-ही भारी-भारी बातें सोच-सोचकर वह गम्भीर बन गया। उसकी इस गम्भीरता का आस-पास अजीब दबदबा फैल गया। लोग उससे दहशत खाने लगे ; क्योंकि वह कम बोलता था, और बोलता था, तब ऐसे, कि मानों वह बात उसकी विधना भी नहीं टाल सकेगा। ऐसी आत्म-दृढ़ता के आगे सबको सहम जाना पड़ता था। फिर बात थी यह, कि वह बहुत सादा रहता था, मांस खाना छोड़ दिया था, और किसी को नहीं सताता था। न किसी से लाग-लपेट रखता था, न ख़ास मुहब्बत और मुरव्वत, और न किसी का डर। बात टालते और बदलते उसे कभी किसी ने न देखा। जब कहता खरी कहता, और उस पर से डिगने का नाम न लेता,—चाहे बुरी लगे, चाहे अच्छी ; चाहे दुश्मन हो, चाहे दोस्त। उसके इस दो-टूक स्वभाव से-ही लोग दहशत खाते थे।

लेकिन इधर दो साल से उसमें और भी परिवर्त्तन हो चला। वह और भी चुप रहने लगा। उसकी आवाज़ में मानो दृढ़ता अब वज्र-कठोर होकर बजने लगी। मानों मन-ही-मन वह एक संकल्प, एक उद्देश्य, एक चाह, एक कर्त्तव्य की सिद्धि की बात सोच रहा है, और उसके योग्य सामर्थ्य बटोर रहा है। एक संदेह था जो पक्का हो गया, और सन् '५७ के दिन आने से दो महीने पहले से उसने फ़िरंगियों की नीति पर कुछ शब्द कहने शुरू कर दिये। एक दल भी बनाया, जो वक्त पर काम आने को था।

उस दल के काम का और चौधरी के पलटा खाने का दिन आया। कहें, चौधरी की परख का दिन आया। सन् '५७ की आग फूटी, और उससे चौधरी एक-दम फुँक पड़ा।

पैंतालीस बरस का होगा, और जवानों में दर्शनीय था।

चौधरी और उसके दल से लोग थर्राने लगे,—अँग्रेज भी और हिन्दुस्तानी भी। क्योंकि प्रसिद्ध था—दल का एक-एक आदमी अँग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकाल बाहर करने की शपथ खाये हुये है। और हिन्दुस्तानी भी उसके सामने मनमानी न करने पाते थे।

लेकिन गुस्सा हद नहीं जानता। उसके साथी अँग्रेजों से गुस्से से जलते थे। पर चौधरी में गुस्सा न था। कहें, उसमें प्रेम था। इसीलिये, वह हद भी जानता था, और जो कर गुजरना है, सो भी।

फाँसी

[४]

एक गौरांग युवती, हिरनी-सी सहमती, चारों ओर मानों आपत्ति की टोह लेती हुई, बच्चे को कई कपड़ों की तहों में लपेट कर उसे कसकर छाती से चिपकाये हुये··पुरे में घुसी।—मानों मौत के मुँह में घुसी।

थक रही है। मुँह पर कातर भाव फैला है। प्यासी है, थोड़ा पानी चाहती है, बच्चे को लिटाने को थोड़ी छाँह, और जरा—बिलकुल जरासा—ढाढ़स। क्योंकि उसे बड़ा डर लग रहा है। चारों तरफ़ इस खोखले शून्य में मानों एक विलक्षण त्रास भरा है, जो उसके कान में रह-रहकर भारी आशंका की सूचना दे जाता है।

चली आ रही है दूर से—धूप में, रास्ते-बे-रास्ते, इस नन्हें-से बच्चे के बाप को ढूँढ़ती हुई, इस भयंकर भय और आशंका में से अपनी राह बनाती हुई···

आज··पुरे के आदमी आनन्द में हैं। जिसे अबतक सिर पर देखा था, उसे पैरों से लथेड़ेंगे, और ख़ुश होंगे। फिर उसे रास्ते लगाकर दूसरे को ढूढ़ेंगे, और उसकी भी वही गति बनायेंगे। जिन्होंने-जिन्होंने उन पर राज्य करने का दम्भ किया, उन सब की ऐसी-ही दुर्गति करेंगे। इसी बदले की बात सोच-सोचकर वे मानों सुख पा रहे हैं। यह दाद खुजाने से मिलने वाला, या कुत्ते को सूखी हड्डी चूसने

से मिलने-वाला सुख है। अपने को-ही खुजाते हैं, अपना-ही खून पीते हैं, फिर भी समझते हैं, वैसा मज़ा कहीं नहीं। ऐसे-ही स्वात्मघातक बदले के भाव के सुख में आज वह ···पुरा मस्त हो रहा है।

[५]

'देखो, वह कौन आ रहा है? देखते हो?'—कहकर कहने-वाले ने एक बड़े भेद की हँसी हँसदी। सुनने-वाला समझ गया। वह भी मानों स्वीकृति में हँसा। यह बात और यह हँसी, इससे उसे और उससे इसे, सब में फैल गई। और वह १५-२० आदमियों का गुट्ट, मानों सर्व-सम्मत, एक समझौते पर आ गया। तभी इनमें से रहमत ने सैन दी पास बैठे लड़के खचेडू को। उसने पहचाना, और वह चला गया। दम-भर में खचेडू अपनी पार्टी को लेकर आने-वाले के स्वागत के लिये चला। पार्टी में ७ से १३ वर्ष-तक के लड़के हैं; ८-१० होंगे। कोई लँगोटा-ही बांधे है, किसी-किसी ने धोती पर कुर्ता भी लटका रक्खा है, किसी के हाथ में ठीकरा है—उसे-ही बजाता चला जा रहा है, कोई बगल ही बजाता है, कोई मुँह से-ही बाजे का काम ले रहा है।

वानर-सेना के इस यथार्थ एडीशन ने कई तरह की आवाज़ें निकालकर उस महिला का स्वागत किया—

एक कहता—आई हैं मेम साऽब
सब बोलते—ख़ुशियाँ मनाओ खूब !
एक—क्या ख़ूब आई हैं वो
कोरस—क्या पड़ रही है धूप !...आदि-आदि ।

वह नीचे धरती देखती-देखती चलने लगी । उसके दोनों ओर यह वानर-दल बँट गया । वैसा-ही तुकान्त या अतुकान्त गीत और वैसे-ही कंकरी फेंककर छेड़-छाड़ आदि जारी रही ।

जहाँ वे आदमी बैठे थे, वहीं आई वह—

'पानी··तोड़ा । प्यासा··बेबी ।···रहम, बाबू !'

एक बात कहदें । जैसे अब अपनी ग़र्ज़ से हिन्दुस्तानी अँग्रेजी सीख लेते हैं, वैसे ही तब, अँग्रेज अपनी ग़र्ज़ से हिन्दुस्तानी जान रखते थे । तब बहुत-कम ऐसे श्वेतांग होते थे जो हिन्दुस्तानी समझ या बोल न सकते थे । बात यह थी कि तब तक अँग्रेजी से हिन्दी, और हिन्दी से अँग्रेजी बनाकर समझा देनेवाले, किराये के बाबू-लोगों का सम्प्रदाय बढ़ने नहीं पाया था ।

महिला ने दोहराया—खोदा के वास्ते···

उस समय सब ने एक-दूसरे की ओर देखा । रहमत ने आगे बढ़कर कहा·—लाओ बच्चे को, मैं देता हूँ इसे पानी ।

रहमत के घनी काली दाढ़ी है,—मक्खी फँस जाय तो जीती न निकले । सिर पर ताज़ी कटी दूब-से बाल हैं ।

ओठों पर लकीर-सी मूछें हैं, जिनके सिरों पर दो पूँछ लटक रहीं हैं। सब मिलाकर वह एक भयानक जन्तु दीख पड़ता है। आँखें पत्थर के हनुमान में जड़ी-जैसी, गोल-गोल, तरेड़ खाती हुई, भट्टी-सी जल रही है। महिला डरी।

पर बच्चा कैसा नन्हा-भोला है! उसको प्यार करने के सिवा कोई कुछ कर ही नहीं सकता! उसने बच्चे को लपेटों में से खोला! कैसा वह नील-नीलो, बड़ी-बड़ी आँखें फाड़-कर देख रहा है रहमत को, और लौट-लौटकर अपनी 'मम्मा' को! झट उसने फिर 'मम्मा' के घोंसले में दुबक रहने का प्रयत्न किया। रहमत के पास वह जाना नहीं चाहता। तब रहमत ने हाथ बढ़ाया। महिला ने भी ज़रा जोर लगाकर 'बेबी, वाटर! बेबी वाटर!!' कहते हुए, बच्चे को उन रहमत के फैले हाथों में थमा दिया।

रहमत ने कहा—लाल्लू!

लाल्लू उठा।

'वहाँ जाओ।···उस जगह···हाँ···ठीक···अब लो।' कहकर रहमत ने बच्चे को उछाला। आकाश में गुड़ी-मुड़ी खाता हुआ वह चला। लपक लिया तब उसे लाल्लू ने। अब तो यही खेल चला। बच्चा इस हाथ से उस हाथ, और उस हाथ से इस हाथ—गेंद की तरह से उछाला जाने लगा। धीरे-धीरे उन लोगों ने अपने बीच का फ़ासला भी बढ़ाना शुरू किया। देखना यही था, कि आखिर कौन चूकता है!

मेम इस वक्त अपना सारा जीवन आँखों में लाकर बच्चे को देख रही है—वह गया, ओह कितना ऊँचा!—गिरा-गिरा!···आह!···वह लपक लिया!! इस तरह उसके प्राण मर-मरकर जी रहे हैं, जी-जीकर मर रहे हैं। इस मौत और जीवन के अन्तराल को उसके प्राण एक क्षण में न-जाने कितने बार आर-पार कर जाते हैं! इस व्यथा को कौन जानेगा?...

वह अब लाल्टू बच्चे को उछालने को है!...हैं-हैं!... वह एक चीख देकर दौड़ी—रहमत ने बढ़कर उसकी कलाई पकड़ ली।

—'कहाँ जाती है?'

तभी लाल्टू ने बच्चा उछाल दिया। तभी एक गरज सुन पड़ी—'क्या है?'

तभी सब कुछ ठैर गया। सब स्तब्ध होगया। बच्चे को किसी ने न लपका—वह आकाश में चक्कर खाता हुआ पत्थरों पर गिरा—सिर खिल गया, और उसका नन्हा सा प्राण हवा में मिल गया। तभी खिड़की में से चौधरी ने झाँका—'क्या है?—ठैरो।'

रहमत ने हाथ छोड़ दिया। महिला बौखलाई खड़ी हो गई। लाल्टू भूला-सा वहीं का हो रहा। और सब भी वहीं चित्र-लिखे-से रह गये।

महिला सन्न!—अब य' और क्या?

चौधरी आया—देखा, अपने ही लोग हैं जिनके चेहरों पर शरारत है, और जिस पर अब दहशत आ छाई है। और एक तरफ़ भयभीता, त्रस्ता, पीता, मानों कब्र से उठकर आई हुई, एक इंग्लिश महिला है। आखें फटी हैं, और देख कुछ नहीं रही है। उसने चिल्लाकर कहा—

'कम्बख्तो, यहाँ यह मर्दुमी कर रहे हो ? डूब मरो ! एक औरत पर हाथ—हिन्दुस्तानी होकर !! तभी इस लड़ाई में लड़ोगे ? हिन्दुस्तान को तुम्हारे यह पाप न-जाने कब तक भुगतने होंगे !'

तभी उसने देखा, पास ही कुछ और है जो तरबूज़-सा खिला पड़ा है, और लाल्लू भूत-सा बन रहा है। उसने लाल्लू को गौर से देखा, फिर बच्चे के नन्हे-से शव के पास दौड़ गया। झुका—बालक की आँखों में खून न आया था, उनमें विश्वास भरा था, और वे हँसने को उद्यत थीं !

वह एक दम उछलकर खड़ा हो गया, आँखें अंगारा हो गईं, फिर गीली हो गईं, और हौलनाक आवाज़ में कहा। वह आवाज़ गूँजती थी, पर खोखली थी, हुक्म से अधिक उसमें दिल की चोट थी, तीखी से अधिक वह भारी थी।

—'ओ, लाल्लू के बच्चे, अभागे, बदनसीब ! सुनता है ? इस बच्चे के मांस की चटनी फिर घर जाकर बनाना, बड़ी अच्छी लगेगी, तू तर जायगा जनम-जनम को।'

फिर महिला के पैरों की ओर संकेत करते हुए कहा—'अरे, आँखें क्या फाड़ता है, अभागे! इस माई के पैरों में गिर—शायद कुछ भला हो जाय।'

बच्चे की माँ के सामने बच्चे का शव पड़ा है—आह!—लाल-लाल लहू कैसा गाढ़ा उसमें से निकलकर जम गया है! नन्हे-से सिर में इतना सारा लहू कहाँ से आगया? अभी छाती से चिपककर पानी माँग रहा था, अभी पत्थरों पर पड़ा सिर फोड़कर दिखला रहा है!—माँ मानों जब तक रहेगी, यहीं खड़ी-गड़ी, इसी खिले-सिर को देखती रहेगी।

लाल्लू ने सिर माँ के पैरों में किया, पर आँसू न ला सका। तब चौधरी ने रहमत को ललकारा, जिसके मुँह पर पाप साफ़ लिखा था—

और, क्यों रहमत, तुझे खुदा से खौफ़ नहीं है? नहीं जानता, ऐसे कामों से तुझे क्या मिलेगा? चल, तू भी माई से माफ़ी माँग ले, नहीं तो कहे रखता हूँ। तुझे एक मिनट को चैन नहीं मिलेगा।

किंतु रहमत को इसमें देर लगी। चौधरी को आवेश हो आया। उसने रहमत का सिर पकड़ माँ के पैरोंमें डाल दिया। रहमत का सिर तो पैरों में गिरा, पर दिल दहक उठा। पर चौधरी का खौफ़ था,—बोला नहीं, चुप रहा।

अंत में चौधरी स्वयं उस महिला के पैरों में पड़कर रोया।—उठो माई, इस पाप का एवज़ हम सब और हमारा यह हिन्दुस्तान देगा। पर पाप को जितना कम कर सकूँगा, ज़रूर करूँगा? माई, मेरे घर चलो। अब भी हैं, जो सच्चे हिन्दुस्तानी हैं, जो स्त्रियों की और माँओं की क़दर जानते हैं, और जो अतिथि की सेवा करना जानते हैं।

तब माँ, मानों स्वप्न में, चौधरी के पीछे-पीछे चल दी। चौधरी ने मुड़कर सब से कहा—

चौधरी को तुम सब जानते हो। कभी ऐसा अब मत करना। तुम जानते नहीं, हमारी लड़ाई कैसी है? ऐसी बातों में हमारी हार है। मेरे लिये जीत और हार और कुछ नहीं; यही जीत और यही हार है। तुम जानते नहीं, चौधरी एक फिरंगी-औरत को बचाने में मर जायगा—और इसी में उसकी जीत होगी। जाओ, पर याद रक्खो मेरी बात!

[६]

कैसे बहादुरशाह पकड़ा गया, कैसे उसके दो बच्चों का ख़ून पिया गया—अलङ्कार में नहीं, चुल्लुओं में पिया गया; किस तरह अँग्रेज़ों की अमलदारी फिर हो गई,

फिर किस तरह शान्ति फैली; और किस तरह फाँसियाँ दी गईं, और किस तरह और बहुत से ढके और उघड़े काम किये गए—इन सब बातों से हमारा सम्बन्ध नहीं।

लेकिन वह इङ्गलिश महिला चौधरी के घर स्वस्थ रहीं। उनकी सेवा में किसी तरह की कमी या उपेक्षा नहीं हुई; और चौधरी ने अपनी तलवार में ज़ङ्ग भी न लगने दी। अपने अतिथि-सत्कार, और अपनी तलवार, और अपने बाजुओं की ताक़त और अपनी दृढ़ता का चौधरी ने पूरा उपयोग किया।

किन्तु अँग्रेज़ फ़तहयाब हुए और चौधरी मरा नहीं। वह मौत को प्यार नहीं करता था। प्यार करता था वह ज़िन्दगी से, और ज़िन्दगी की उपयोगिता से। रास्ते में मौत आती थी तो वह मानों उसकी ज़िन्दगी का-ही एक काम था।

दिल्ली में अँग्रेज़ों का शान्ति-स्थापन का काम चल दिया—जो शान्ति फाँसी के तख़्तों के बराबर और खून से सानकर स्थापित की जाने वाली थी—और चौधरी अपने उसी···पुरे में, उसी दृढ़ता, उसी प्रतिज्ञा को लेकर रहने लगा।

लेकिन घर में जाकर कहा—

माई, तुम्हारे लोग अब दिल्ली में हैं। यहाँ जब-तक मैं हूँ, तब तक तुम्हें कुछ फिकर नहीं। पर मेरा-ही

क्या ठीक है ? तुम्हारे लोग मुझे दुश्मन समझते हैं, मैं उन्हें दुश्मन समझता हूँ। इससे अच्छा है तुम वहीं चली जाओ।

महिला ने बड़े हर्ष-से यह स्वीकार किया।

एक रोज़ रथ में बैठाकर उस महिला को चुपचाप 'सिविल-लाइन्स' में लाकर छोड़ दिया गया।

उसी रात को चौधरी का मकान घेर लिया गया और वह गिरफ़्तार कर लिया गया।

[७]

एक ने कहा—ओह, माई डियर !

दूसरे ने कहा—डीयरी, माई डार्लिंग !

और दोनों बिछुड़े मिले।

कर्नल को खोई पत्नी मिली। जिसे क़ब्र में गाड़ चुका था, वही मानों क़ब्र से उठकर चली आई। और पत्नी को गया प्राण मिला।

इस सुखद मिलन में प्रेम का ज्वार उमड़ा, और एक बार सब-कुछ—वह बच्चे की स्मृति, और चौधरी को कृतज्ञता भी—उसी में डूब गई।

इस दृश्य को यों-ही छोड़ दो—छेड़ो मत। इन दुखियों को मिल लेने दो, हँस लेने दो, रो लेने दो, अपनी-अपनी सुना लेने दो।

इतने तुम हमारी एक बात सुनो। कर्नल अब कर्नल नहीं हैं। एक मार्शल-कोर्ट के मजिस्ट्रेट हैं, न्यायाधीश हैं।

राजधर्म का पहला नियम है कि शासन से न्याय अलग होकर, ऊपर होकर रहे। शासन की निरंकुश होने की ओर वृत्ति होती है। अधिकार मद है। अधिकार की आदत अधिक अधिकार माँगती है। न्याय उस पर अंकुश रक्खे। शासन न्याय के प्रति उत्तरदायी रहे, और शासन न्याय को मांग और न्याय के हुक्म को पूरा करे और उसके नियम की मर्यादा में रहे। राजतंत्र के तंत्रियों के निमित्त राज्य के सभा-गुरु (Legislators) विधान बनाकर देते हैं। शासक, शासित, दोनों के लिए वह विधान एक है, एक-सा है। और वह विधान, फिर न्याय-संस्था के संरक्षण में आ जाता है। वह संस्था आँख रक्खे कि मर्यादा टूटे नहीं, शासक-शासित में स्थान-भेद के अतिरिक्त मनुष्य-भेद न होने पावे, मानवीय समानता उनमें बनी-ही रहे, शासन दायित्व रहे, वह हक़ न बने। आदि।

किंतु, यह साधारण बात है। विशेष बात यह है कि—'आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति।' जब मर्यादा नहीं रखनी हो, तोड़नी हो, तब आपत्तिकाल बुला लेना चाहिए। शक्ति के लिये यह सहज है। बुलाने की बात दूर नहीं है। मर्यादा तोड़ी, और कहा, आपत्तिकाल था। आपत्काल न होता, तो मर्यादा टूटती ही कैसे? टूटी, इससे प्रमाणित है कि टूटनी चाहिए थी।

यह तर्क शक्ति का है। और आपत्ति में शक्ति का राज्य न हो तो धरती विध्वंस हो जाय। इस शक्ति-राज्य का नाम है, 'मार्शल ला'।—अर्थात्, 'कानून, शक्ति को मुट्ठी में'। तब न्याय को आले में बैठा दिया जाता है, और राजधर्म, नीतिधर्म आदि-आदि धर्मशास्त्रों को भगवद्भजन करने दिया जाता है।

और, ऐसा कोई करता नही, ऐसा करना पड़ ही जाता है। 'चाहिए' का प्रश्न नहीं है। नहीं चाहिए, यह कौन नहीं कहता; पर शांति का उत्तरदायित्व कभी-कभी मांगता है— लहू बहाओ। सो उन्हें लहू बहाना पड़ता है। हम-तुम शांति के महान् उत्तरदाताओं की दिक्कत क्या जानें? इससे हमें चाहिए, हम कुछ न बोलें। अस्तु।

तो ऐसा ही आपत्काल था। इसलिये कर्नल एक मार्शल-कोर्ट के मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर हैं। जिन्होंने अब तक तलवार का-ही काम किया है, उनके हाथ में अब न्याय की क़लम आई है। अब-तक मारने का काम किया था, अब जिलाने का काम आया; क्योंकि वास्तव में न्याय का काम जिलाने का है। न्याय दया के समीप है, क्रूरता से उतना नहीं। लेकिन, मुमकिन हो सकता है, ख़ास हालतों में न्याय का यह काम-ही बदल जाय, जिलाने की जगह और-कुछ हो जाय। शायद यही वजह थी। तब तो हमें यह मान लेना पड़ेगा कि कर्नल उपयुक्त न्यायाधीश थे।

२

अब तक शायद पत्नी को या रिश्तेदारों को खत लिखने के अतिरिक्त कलम को इन्होंने ज्यादा नहीं चलाया था, ज्यादा नहीं तंग किया था ; न दिमाग को ही सोच-सोच कर परेशान किया था। अब जो सूक्ष्म-निर्णय की जोखम का यह काम सिर पर आ गया, तो कर्नल ने उसे भी उसी घाट उतारना शुरू किया। अब तक तलवार लेकर कर्नल ने ऐसी-ही अपनी आदत डाली थी, —आया, काटकर फेंका, ख़तम ; फिर दूसरा... ; यही आदत उन्होंने इस काम में भी, बिना रोक-हिचकिचाहट, बरती।

[८]

इतनी बात कहने के बाद अब वहाँ पति-पत्नी के पास चल सकते हैं। ज्वार उतर चुका है, और अब बातों में बहुत रस या बहुत आह नहीं है। पत्नी ने कहा—

'They've killed, butchered, my child—our child;—don't spare them, my dear.'

('उन्होंने मेरे—हमारे बच्चे को मार डाला है। उन्हें छोड़ना मत।')

'Nor I will, dearie.'

('न—कभी नहीं।')

'There, my love. Thats' good !'

('बस-बस यही तो, कैसे अच्छे हो तुम !')

जब ऐसा प्रोत्साहन प्राप्त हो, तो काम तेज़ी से चल निकले—इसमें अचरज क्या ?

उन्हीं शीघ्रता-वादी प्रोत्साहन-प्राप्त कर्नल-मजिस्ट्रेट की हाज़िरी में आप उपस्थित हैं।

पते-नाम-धाम की रूखी कार्रवाई सब हो चुकी है। अब लाल्ह हाजिर हुआ है। हाजिर तो हो गया, पर ठूँठ-सा खड़ा रह गया। चौधरी को देखा,—फिर बोल न निकल सका।

इस पर न्यायमूर्त्ति के मुख से लाल्ह के लिये जो शब्दावलि मुखरित हुई, उसे हम यहाँ नहीं दे सकेंगे। पर लाल्ह की जीभ में से जैसे किसी ने जान खींच ली हो—वह बोल नहीं सकता। न्यायमूर्त्ति ने आठ बेंत का हुक्म सुनाया।

तब आया रहमत। बड़ी हिम्मत बाँधकर बोलने लगा—अजी, एक मेम साहब को बेइज्ज़त...

'रहमत के बच्चे, झूठ...!'—चौधरी ने दहाड़ा। तभी हथकड़ियाँ मज़बूत कर दी गईं, दो-एक सिपाहियों ने जंजीरों में झटके भी दिये, किसी ने चौधरी के बदन पर अपनी ताक़त का भी ज़ोर आज़माया, और जज साहब ने फ़रमाया—'चुप, सू...'

लेकिन जंजीरें कितनी-ही कसलो, और गाली कितने ही गरजालो, रहमत अब बोल सकता नहीं।

'क्या है, बोलता क्यों नहीं ?'

'कुछ नहीं, हजूर।'

पाँच बेतों का इनाम इसे भी बोल दिया गया।

तब चौधरी ने कहा—क्या कहलवाते हो इन बेचारों से—जो है, सो मैं कहता हूँ। बात कुछ बड़ी भी तो नहीं है। मैं तुम लोगों को यहाँ नहीं चाहता। तुम लोगों का राज मैं नहीं मानता। यह तुम्हारी मजिस्ट्रेटी ही नहीं मानता। तुम अँग्रेज हो, अपने देश में रहो। हम हिन्दुस्तानी हैं, हम यहाँ रह रहे हैं। तुम्हारे यहाँ जगह नहीं है, कम है—अच्छी बात है, तो फिर यहाँ रहो; पर आदमियों की तरह से रहो। यह तुम्हारी सिर पर चढ़ने की आदत कैसी है? सो-ही हम नहीं चाहते। ऐसे जब तक रहोगे, तब-तक हम तुम्हारे खिलाफ़ रहेंगे। भाई बन-कर रहोगे, बराबर-बराबर के, गोरे-पन की ऐंठ में न रहोगे तो हम भी तुमसे ठीक बरतेंगे—और फिर देखें कौन तुम्हारा बाल भी छू सकता है। पर वैसे ?—न, दम-में-दम है, तब तक तुम्हारे दुश्मन रहेंगे। बस, और क्या कहलवाते हो ?

'वह मेम का बेइज्जटी...'

चौधरी ने टूट कर कहा—बस करो, बस। तुम अभी हिन्दुस्तान की आन नहीं समझते। अपने से-ही सब

को समझते हो—तभी ऐसी बात कह गए। अब से ऐसा न कहना—ख़बरदार, नहीं तो ख़ता खाओगे। हिन्दुस्तानी, सच्चे हिन्दुस्तानी, कपूतों की बात छोड़ दो, स्त्री पर कभी हाथ नहीं उठाते, स्त्री को माँ समझते हैं। समझे, हे अँग्रेज, खूब समझ लो।

तब उसे बच्चे की उस माँ की याद आगई। सोचा—कह दूँ उस बात को। अगर सच न समझेगा तो अभागा है, सच समझेगा तो अच्छा-ही होगा। लेकिन न...ऐसी बात क्या याद करने की होती है, क्या कहने की होती है? की नहीं, कि कुयें में डालीं—याद भी नहीं, ध्यान भी नहीं। इसलिये उसने आगे कुछ न कहा।

तो अब दो बातें हुईं; बेइज्ज़ती की बात और बलवे की बात। पहली पर २५ कोड़े, दूसरी पर फाँसी।

फाँसी-ही है तो कोड़े क्यों?—पहले हम भी चकराये। फिर समझ में आगया कि अलग-अलग जुर्मों की दो सजायें हैं। फाँसी-ही सिर्फ हुई तो पहली सजा के दण्ड के बिना-ही मुजरिम चला गया और कानून का पेट नहीं भरा। इसलिये कानून के पेट के लिये दोनों सजायें अलग-ही-अलग दी जाना जरूरी हैं। ठीक, बहुत ठीक!

अभी बहुत-सों को निपटाना है, फिर जज साहब को टेनिस खेलने जाना है, और वह इन्तजार करती होंगी। इसलिये चौधरी को तुरन्त ले जाया गया।

[६]

जैसे बहुत बड़ी दावत होती है न! कढ़ाये चढ़ते हैं, झटपट-झटपट काम होता है, सब-के-सब काम में लग जाते हैं। पूरियाँ बिल पाई नहीं कि कढ़ायों में छोड़ी गईं, और सिक नहीं पातीं कि फिर और! कढ़ाये गर्म-ही रहते हैं। वैसे-ही अब शान्ति-स्थापना होगी। इसके उपलक्ष्य में यम-देव की खूब बड़ी दावत की जा रही है। खूब चुस्ती से काम हो रहा है। आदमी पकड़े नहीं गये, कि चढ़ाए नहीं गए। एक-ही साँचा है—फाँसी। आया, कि उसी की मोहर लगा दो। अब पेड़ों पर सैकड़ों फाँसियाँ चढ़ी हुई हैं। खाली हो पाती हैं, कि और आदमी पहुँचते हैं। पहुँचे, कि चढ़े। खूब गर्म बाज़ार है। मालूम नहीं, यम महाराज के भोज की यह तैयारी कब-तक चली। अगर यम-देव सन्तुष्ट न हुए हों, तो हम चुनौती देकर कह सकते हैं, भोज करने-वालों की इसमें ज़रा त्रुटि नहीं।

कोड़े लगना देखा है? नहीं देखा, तो देखने की एक ख़ास चीज़ नहीं देखी। देखिये—

वह टिकटी है। और वह चौधरी टिकटी पर बँधा है। हाथ ऊपर और पैर नीचे चौड़ रहे हैं। दिगम्बर है। मुँह उसका हमसे दूसरी ओर है। है तो हो, पर हम जानते हैं, वह जरूर वैसा-ही है, जैसा हमेशा रहता है।

कुछ दयालु लोग और कुछ दर्शक लोग दृश्य को देखने और मज़ा लेने चारों ओर इकट्ठे हैं।

कोड़े और कोड़े लगाने-वाले में भी विशेषता है। कोड़ा कई रोज से भीगा हुआ है, आजमाया भी हुआ है। यह नहीं हो सकता कि चोट कच्ची बैठे, या कोड़ा टूट जाय। अब वह आदमी भी साधारण नहीं है। इस हुनर का काफ़ी अभ्यस्त है। पिछले कई रोज से अभ्यास ताजा करता रहा है। ऐसे पैंतरे बदलकर, ऐसे सपाक-से कोड़ा मारता है, कि क्या मजाल जो ग़लत बैठे, और भरपूर जोर से न बैठे !!

वह देखिये, ठीक पैंतरों से वह बढ़ा, मानों टूर्नामेंट में एक प्रतिद्वन्द्वी है। मानों अपने खेल के दाव-पेच दिखा रहा है। बढ़ा,—बढ़ा,—वह आया बढ़ के। कोड़ा बराबर हवा में सनसनाता चक्कर खा रहा है। कैसा सर्राटा है—जैसे डसने से पहले साँप की जीभें लम्बी होकर सर्सराती चक्कर काट रही हों! देखते हैं न, वह खुला नितम्ब-भाग आप ?—वह देखिये—

वे तीनों-चारों जीभें आईं, मांस के अन्दर मानों जा घुसीं। अब घुसकर बाहर निकल आई हैं, और वहीं जोंक जैसी चिपट बैठी हैं! लेकिन नहीं, आप भूलते हैं। कोड़े-वाला तो कोड़ा लेकर चला गया है, वहीं अपने प्रस्थान के स्थान पर, यह उभरन तो खाल की ही है। खाल-ही नीली पड़कर उभर आई है।

इसी तरह कोड़े पड़े। ख़ून निकल आया—उछट कर पड़ा कोड़े-वाले के मुँह पर। कुर्त्ते की बाँह से उसने उसे पोंछ लिया। कैसा वीर है!

तब दयालु सज्जनों की दयालुता का अवसर आया। फिनायल से भीगा कपड़ा उन्होंने आहत भाग पर बिछा दिया; जिससे ख़ून उछटे नहीं, और घावों को जल्दी आराम हो जाय।

बस, बहुत हुआ। आइये, चलिये। हमारा जी खराब होता है—हम नहीं ठैर सकते।

हाँ, क्या पूछा?—बेहोश हो जाय तो? तो कुछ नहीं। दयालुओं की दयालुता इसे अपने उपचारों-द्वारा शेष कोड़े खाने के लिये फिर होश में लादेगी!

अब आप कहते हैं, यह सब व्यवस्था बड़ी पक्की-पूरी है! है न? कचाई कहीं न मिलेगी।

[१०]

सोफे पर आधा लेटकर पति ने पूछा—तुमने बताया नहीं, तुम कहाँ-कहाँ रहीं।

गुलूबन्द की बुनाई की सलाइयों को फन्दे में अटका छोड़ कर, आँखें ऊपर उठाकर पत्नी ने कहा—तुमने भी तो नहीं बताया।

इस पर पति ने अपनी सारी बीती कह सुनाई। फिर पत्नी ने कहा—मुझे तो ज़्यादा नहीं कहना। तुम यहाँ नहीं मिले, तो मैं तुम्हारी तलाश में, चली। चलते-चलते...पुरे में पहुँची। ख़ैर मानों, मैं वहाँ बच गई। ओह, बच्चा तो... बच्चा तो वहीं पटककर मार दिया गया! मेरा न-जाने क्या हाल होता, पर चौधरी...

'चौधरी ?'—उत्सुक प्रश्न-याचक-स्वर में पति ने दोहराया।

'हाँ चौधरी...,...पुरे का।'

'...चौधरी, ...पुरे का ?'

'हाँ—तो ?'

'चौधरी ?...उसने क्या किया ?'

'उसने मुझे बचाया। जिन्होंने मेरे साथ ठीक सुलूक नहीं किया था, उन्हें मेरे पैरों डाला। ख़ुद मेरे पैरों गिरकर मुझे माँ कहा, और अपने यहाँ रक्खा; बड़ी अच्छी तरह रक्खा।'

ओह!

'क्यों ? क्या बात है ?'

वह क्या बताये ? कुछ नहीं बता सकता।

'बोलते नहीं ? तुम्हें हो क्या गया ?'

तब बड़े क्षोभ से उसने कहा—

'ओह! मैंने उसे फाँसी दे दी!'

'फाँसी ?'

वह चीख़ मारकर मूर्छित हो पड़ी।

[११]

फाँसी की जगह वह आई है। लाशें ठेलों पर लादी जा रही हैं—जैसे बोरे लादे जाते हैं, उतनी-ही पर्वाह या लापरवाही से; बल्कि उपेक्षा-भाव ज्यादे-ही है, क्योंकि लाशें बोरों से ज्यादा हैं।

महिला ने हुक्म दिया—'ठैरो!' अँग्रेज़ी महिला का आज्ञोल्लंघन—उस समय कौन था, जो कर सके?

काम रुक गया—महिला ने एक-एक लाश देखी। आख़िर चौधरी का शव मिला। उसे अपनी गाड़ी में रखा। बँगले पर आई। लाश देखी—आँखें निकली हुई हैं, लहू से बदन लाल और चिपकना हो रहा है, पर चेहरे पर अब भी सिकुड़न नहीं है, जैसे उसकी आत्मा में एक भी सिकुड़न नहीं थी।

बँगले पर लाश को ख़ास कमरे में ले आया गया। ईरानी कालीन ख़ून के धब्बों से लाल होता जा रहा है, इसकी उसे पर्वाह न हुई। कहा—

'जॉन! सुनो। इधर आओ। इसकी क्रिया ठीक तौर

पर करनी होगी, और सब खर्च तुम्हें करना होगा। सुनो? करोगे?'

जॉन ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया।

'अच्छा, अब इनके पैरों में सिर नवाओ! यह देवता आदमी था।...घबड़ाओ नहीं, जिन्दा होता, तो मैं नहीं कहती। मर गया है, तो पूज्य से अधिक है। विश्वास रक्खो, उसके पैरों में सिर नवा रहे हो, जो तुमसे ऊँचा था, बड़ा था, पक्का था, और परमात्मा को प्यारा था।'

कर्नल ने सिर पैरों में नवा दिया।

'जॉन! अब मैं जाती हूँ। औरों के पाप का प्रायश्चित्त इसने किया, तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त मुझे करना होगा। जाती हूँ, अच्छा है, चले जाने दो। रोकोगे, तो भी न रोक सकोगे।'

कर्नल ने देखा—कुछ है, जो उससे नहीं दबेगी, जिसके खिलाफ़ बोलने की उसे हिम्मत नहीं होगी, जो कुछ देवी-सी है, और जिसके सामने सिर नवा लेना-ही कर्नल का धर्म है। वह चुप हो रहा। वह चली गई।

[१२]

जहाँ चौधरी का शव जला था, वहीं जमना के किनारे कई साल तक एक झोंपड़ी रही। कहते हैं, वहाँ एक

पगली तपस्विनी रहती थी, जिसका काम कभी हँसना और कभी रोना था। इस हँसने और रोने का कोई क्रम न था। वह किसी से नहीं बोलती थी। मालूम नहीं, कैसे रहती थी, और क्या खाती थी! वह रंग में इतनी सफेद थी कि लोग उसे यमुना-तीर की संरक्षिका प्रेतात्मा समझ, उससे दूर-दूर रहते थे।

तब एक दिन वह झोंपड़ी भी नहीं रही, और न वह पगली-ही फिर देखी गई!

---

[१]

सुन्दर युवा है। साधारण हो पढ़ा और इकहरी देह का है। उम्र कोई ३५ वर्ष। आकृति में कुछ विशेषता नहीं। केवल आँखों में न-जाने क्या है! देखते-ही दहशत होती है, पर तुरन्त-ही उसे जानने को जी हो आता है, फिर मित्रता पाने की इच्छा होती है। इसी तरह परिधान में कुछ विशेषता नहीं है; केवल चौबीसों-घण्टे लँगोट बाँधे रहता

है। इसी का नाम मोहनसिंह है। इसी के सिर पर दस हज़ार रुपये इनाम बोला गया है।

'क्यों ? वह क्या करता है ?'

किसी ने उससे पूछा था। उसने उत्तर में कहा था—'उपकार और कविता।'—फिर पीछे-से समाधान करने के तौर पर कहा था—'डकैती !'

किन्तु उपकार तो नाप-तौल करने की, और देखने की चीज़ नहीं है—वह साबित करने की भी चीज़ नहीं है, और न गिनाने की-ही है। इससे उपकार की बात तो नहीं की जा सकती। हाँ, उसकी कविताओं का और डकैतियों का थोड़ा-सा रेकॉर्ड है।

'शमशेर' उसका उपनाम है। डकैतियों में भी, कविताओं में भी यही नाम प्रसिद्ध है। शमशेर से-ही लोग डरते हैं, उसी की तारीफ करते हैं, और बहुत-से हैं, जो उसी के एहसान मानते हैं। वे मोहनसिंह को नहीं जानते; बस, 'शमशेर' को जानते हैं।

जहाँ एहसान की बात है, वहाँ कितने उसके उपकृत हैं, और कितने उसके शत्रु; यह बताना कठिन है; परन्तु उसका कहना है कि, दुनिया के लोगों के उस बहुत-ही सूक्ष्म और अविचारणीय भाग को छोड़कर, जो, धनमत्त, अधिकार-मत्त व्यक्तियों को लेकर उठ खड़ा हुआ है, और उन्हीं के छल-छिद्र, जोर-जुल्म और षड्यन्त्रों के आधार पर आज

सब के सिर पर बैठने का दम्भ करता है—मनुष्यता के उस जघन्य अंश को छोड़कर सब उसके पूज्य हैं। अतः सब का-ही वह हितैषी है, सबका सेवक है।

लेकिन दुनिया का वही जघन्य और सम्मानित पुरुषों का गुट्ट कहता है—'शमशेर शैतान है, पापी है, डाकू है; उसकी ज़िन्दगी बख्शने-लायक नहीं।' और इसका प्रतिवाद कोई नहीं करता। दीनों की, असहायों की, बालकों और माताओं की, दलितों, आर्तों, और दयार्थियों की अंधा-धुन्ध संख्या, जो 'शमशेर' के उपकारों को जानती है, प्रतिवाद में एक शब्द नहीं कहती, प्रतीकार में एक उँगली नहीं हिलाती। क्या वह मूक है, क्या वह अपंग है?—या स्वीकार करती है कि उनका उपकारी शैतान है? 'शमशेर' उनकी अयाचित सहायता करता है, चुप-चुप उनकी पैसे से, और-और प्रकार से रक्षा करता है, यह सब उनके लिये ठीक है, लेकिन आज उसे फाँसी लगे तो यह भी कदाचित् ठीक ही है!

इसलिये जब कानून कुछ कहता है, तो माना जाता है, यह विश्व-भर की सम्मति है। 'शमशेर' को इसमें भारी सन्देह है। पर, सन्देह भारी हो, विश्व पर उसकी लाचारी नहीं है। और कानून की लाचारी है, क्योंकि कानून पर पुलिस है। इससे, उसकी सम्मति न सुनी जा सकेगी। अस्तु।

हम उसकी डकैतियों का हिसाब बिना सरकारी रजिस्टर देखे यहाँ नहीं दे सकते ; वह रजिस्टरों में दर्ज है। पर, उसकी कविताओं का रेकॉर्ड लोगों के हृदय में बसा है, ज़बान पर लिखा है। शब्द याद नहीं, नमूना नीचे है।—

• • •

लोगो, 'शमशेर' से डरते क्यों हो ? वह फौलादी है, पर देखो, कितना झुक जाने को तैयार है!

• • •

लेकिन खबरदार! उसकी धार के सामने न पड़ना, वह न्याय की तरह बारीक है।

• • •

'शमशेर' दो बातें जानता है—बहादुरी और ग़रीबी। जिनमें दोनों नहीं, वे क्या आदमी हैं ?

• • •

बहादुर अमीरी जीतता है, बनिया ठगता है। बहादुर को सिर झुकाओ, बनिये की अमीरी छीन लो।

• • •

बहादुर अमीरी को ठोकर मारता है, बनिया उससे चिपटता है। बनिये को नंगा कर छोड़ो। उसका 'बनियापन' उतार लो। उसे आदमी बनने दो।

• • •

विजेता सम्राट् अभिनन्दनीय हो, पर—पिछलगुए

गीदड़ ! क्या गीदड़ों की अधीनता स्वीकार करोगे ?—उन्हें सर झुकाओगे ? मर मिटो, पर तने रहो, मर्द रहो।

• • •

'शमशेर' ने किताब में देखा—इन गीदड़ों के ग़ोल का नाम है—'आरिस्टोक्रेसी ।' इस आरिस्टोक्रेसी में 'शमशेर' आग लगाने उतरा है। तुम भी आओ ।

• • •

आरिस्टोक्रेसी !—कम्बख़्त ग़रीबी के सिर पर पैर रख कर कहती है—हम हैं आरिस्टोक्रेसी ! ऐ लोगो, शमशेर के साथ मिलकर कहो—हम तेरा काला मुँह करेंगे ।

• • •

'शमशेर' सरकार से कहता है—'तुम उसे फाँसी दोगे ।' लोगों से कहता है—'तुम उसके लिये रोओगे ।' दोनों से कहता है—'दोनों भूल में हो ।'

• • •

और, सबसे वह कहता है—दया पाप है, रोना पातक है । मत रोओ, मत रहम खाओ ।

• • •

तुम प्यार के गीत गाते हो। 'शमशेर' मना नहीं करता, पर कहता है—पहले उस दरख़्त की खोह में बसेरा

डाले, त्रस्त, चार दिन के भूखे, उस परिवार को देख आओ, फिर प्यार को जो रहे तो करना।

• • •

अपने स्त्री-बच्चों के बीच तुम अपने को ऐसे भूले जा रहे हो, जैसे परमात्मा नहीं है, और जवाब तुम्हें नहीं देना।

• • •

प्यार !—यह जरूरत है। कौन कहता है, कि नहीं ; लेकिन जीवन पहली जरूरत है। पहले उसे पैदा करो, दीनता का सत्यानाश करो।

• • •

जानते हो, 'शमशेर' प्यार का क्या करता है ? उसे कुचल डालता है, और फिर नेक रो लेता है और फिर अपने काम में लग जाता है।

• • •

लेकिन लोगो, 'शमशेर' बेवकूफ़ है। प्यार कभी कुचले मरा है ? कुचले से और भर न आये, वह प्यार-ही क्या ? इसी प्यार का दूसरा नाम है—दुःख। यह दुःख 'शमशेर' का शेवा है।

• • •

लेकिन शमशेर—शमशेर रहेगा। प्यार आयगा,—आये। वह बहेगा क्यों, भूलेगा क्यों ? दुनिया को याद रक्खेगा, और अपनी टेक को याद रक्खेगा।

[२]

जाड़े की रात चुप-चुप फैली हुई है। अन्धकार निस्पन्द पड़ा है। हवा बर्फ की ठंड से सिसकारियाँ लेती हुई इधर-से-उधर भाग रही है। और वे मोती-से तारे काँपते हुए इस शान्त अन्धकार में से, सोती और जागती दुनिया का सब हाल देख रहे हैं।

दो बजे होंगे।

घना जंगल है। कटीली झाड़ियाँ आपस में चिमटी हुई दूर-तक फैली हुई हैं। उसके बीच में से अनगिनत पगडण्डियाँ इधर-उधर चारों तरफ़ से आकर एक-दूसरे को काटती हुई न जाने कहाँ, किधर को, निकली चली जा रही हैं। जहाँ जरा पैर रखने की जगह दीखती है, वहीं पग-डण्डी है। लेकिन कुछ कदम चलने पर-ही वह ख़तम हो जाती है, और कटीली झाड़ियों का एक झुरमुट सामने आ खड़ा होता है।

रास्तों की इसी भूल-भुलैयाँ में एक व्यक्ति कम्बल का एक पुराना लबादा ओढ़े, नंगे-सिर, मुँह से सीटी बजाता हुआ चला जा रहा है। न उसे समय की चिन्ता है, न अपनी चिन्ता है। कभी गुप-चुप हँसते तारों को देखता है, कभी सुन्न झाड़ियों को देखता है। क्या रास्ते को कभी देखता है ?

अचानक उसका ध्यान बटा, वह ठहरा। एक दहलाने वाली आवाज़ उसके कान में पड़ी। पूछा जा रहा है—'कौन है?'

कुछ ठहरकर उसने पूछा—क्या है?

प्रतिध्वनि हुई—कौन जा रहा है?

पूछा—आप कौन हैं?

'ग्रेटहार्ट!'

ग्रेटहार्ट के नाम से रात के आदमी थर्राते हैं। व्यक्ति ने उत्तर दिया—

'मैं हूँ, शमशेर!'

'मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।'

'आप?'

'हाँ!'

'मेरा सौभाग्य।...लेकिन गिरफ्तार होने की मेरी इच्छा नहीं है।'

एक फ़ायर हुआ।

कर्नल ग्रेटहार्ट अचूक गोली मारते हैं, पर शमशेर को किसी गोली ने नहीं छुआ।

शमशेर ने कहा—यह क्या कर्नल साहब?

'मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता। सीधी तरह गिरफ्तार हो जाओ।'

'मैंने कहा, कर्नल साहब, मेरी ख्वाहिश अभी नहीं है गिरफ्तार होने की।'

'नहीं है तो मरोगे।'

'क्या डर है?'

'अब खाली गोली न होगी।'

'क्या डर है?'

एक गोली सनसनाती हुई आई, और शमशेर के कंधे में से पार हो गई। एक हाथ से उसने गोली का आर-पार छेद बन्द कर लिया। उसने सुना—

'मान जाओ। यह गोली सिर में लगेगी।'

शमशेर ने कहा—अरे, गोविन्द!

दो आदमियों ने न-जाने कहाँ से आकर, न-जाने कैसे, पल-भर में कर्नल को खाली-हाथ कर दिया। कारतूस भरा-का-भरा रहा। कर्नल ने कहा—फ़ायर!

पाँच गोलियाँ दन्न से दगीं। वे दोनों धरती पर लोट गये। इसी समय मालूम हुआ जैसे काले भूतों की फ़ौज-की-फ़ौज ज़मीन से निकल पड़ी है। दो-एक क्षण कुछ पता न चला, क्या हो रहा है। फिर कर्नल के पाँचों सिपाही शमशेर के सामने पेश किये गये। खुद कर्नल भौंचक, निहत्थे खड़े रहने दिये गये।

शमशेर ने कहा—इन पाँचों को बाँधकर यहीं छोड़ दो। कर्नल से कहा—कर्नल साहब, आज आपको मेरे साथ

चलना होगा। देखिये, आपने मेरे पाँच आदमियों की हत्या की है। क्या आपकी जान पाँच से अधिक है?

इतना कहकर शमशेर ने अपने खाली हाथ को कर्नल साहब के हाथ में डालकर उन्हें अपने साथ ले लिया।

अपने आदमियों से कहा—तुम लोग जाओ, पर निश्चिन्त न रहो। आज पाँच आदमियों की हत्या का पाप मेरे सिर और चढ़ा है। भगवान् मालिक है।

कर्नल ग्रेटहार्ट चुपचाप शमशेर के साथ चल रहे हैं। शमशेर भी चुप है। दोनों सोच रहे हैं।—क्या सोच रहे हैं?...

कुछ देर बाद शमशेर ने कहा—कर्नल साहब! जो हूँ, वह न होता, तो मैं आपका सेवक होता, और धन्य होता।

दोनों ने, दोनों को देखा।

शमशेर ने कुछ देर बाद पूछा—साहब, पहले आपने खाली फ़ायर किया, फिर कंधे पर गोली मारी। आपने यह गलती क्यों की?

'गलती...?' और बीच में रुककर कर्नल चुप होगए।

'आपके क़ानून में पाँच आदमियों की कुछ कीमत नहीं है। फिर आपने मेरी जान क्यों बख्श दी? आप चाहते, तो मुझे पहली गोली में मार सकते थे।'

कर्नल ने कुछ जवाब न दिया।

'आपने क्या मुझ पर रहम किया?'

'तुम्हें फाँसी चढ़ना है, इसलिये नहीं मारा।'

'कर्नल साहब, क्या आपके नज़दीक जान की कुछ क़दर नहीं है ?'

'नहीं, ...!'

'क्यों नहीं ?'

'तुम्हारे साथ बहस नहीं माँगता।'

'कर्नल साहब, आप मेरे हाथ में हैं।'

कर्नल भौं सिकोड़ कर रह गए।

'मैं आपको मार सकता हूँ।'

कर्नल ने फिर उपेक्षा का एक 'एह !' कर दिया और बस !

'कर्नल साहब, मैं आपको मार दूँ, तो ?'

कर्नल ने अपनी उपेक्षा न तोड़ी।

'सुनते हैं ?—आपको मार दिया जाय...तो ?'

कर्नल ने विस्मय से देखा।—'तो ?...तो क्या ?... कुछ नहीं।'

शमशेर ने सोचा—यह शख्स अपनी जान की क़दर नहीं करता, इसलिये इसे अधिकार है, दूसरे को भी न करे।

इधर कर्नल ने सोचा—कैसा अद्भुत जीव है। कंधा आर-पार बिंध चुका है, फिर भी हँसकर बातें कर रहा है !

शमशेर ने कहा— कर्नल, आप बड़े हैं, मैं छोटा हूँ ; लेकिन...

कर्नल ने झटककर कहा—मैं तुमसे नहीं बोलना चाहता।

'क्यों ?'

'तुम आदमी हो ?—जानवर हो।'

इस पर शमशेर हँसा। चाहता था, ठठाकर हँस पड़े। कहा—'यह देखते हैं ?' और यह कहकर जख्म पर से अपना हाथ हटा लिया। लाल ताजे गर्म लहू का एक फव्वारा-सा छूट पड़ा। कुछ सेकिंड बाद अपने हाथ से जख्म बन्द कर हँसते हुए शमशेर ने कहा—इस...इसके बाद चुप रह जाने की आदत जानवर में कम होती है... आदमी में भी बहुत नहीं होती।

कर्नल के जी में रोना उमड़ आया। उनके भरे जी ने देखा—शमशेर वीर है, खून का खिलाड़ी है; किन्तु सरकारी तर्क ने कहा—कुछ हो, वह डाकू है। इस पर, अपनी उमड़न को भीतर-ही रोक, उपेक्षा के गर्व से भरकर वह चुप-ही खड़े रहे।

शमशेर ने मुस्कराते हुए कहा—साहब, खून बहुत आ रहा है। बताइये क्या करूँ ? यह आपकी ही कृपा है।

कर्नल की देह में पर्याप्त बल था। उन्होंने एक-दम पकड़ कर शमशेर को नीचे डाल लिया। वह कुछ भी समझ पाये कि इतने में जख्म पर से उसका हाथ हटा कर कर्नल ने अपनी कमीज में से एक टुकड़ा फाड़ कर जख्म बाँध दिया।

अब शमशेर का सिर कर्नल की गोद में था।

शमशेर ने कहा—यह धोखा !

कर्नल ने कहा अँग्रेज ऐसे ही होते हैं।

अपनी कमीज़ को चीर-चीर कर घाव का ड्रेसिंग करने के बाद कर्नल फिर उसके साथ चल दिये।

एक फूस के मकान के किनारों पर थपथपा कर शमशेर ने कहा—मान !

थोड़ी देर तक किवाड़ न खुले।

'मैं हूँ, मोहन।'

'सरदार !' कहकर विस्मय से 'मान' ने तुरन्त किवाड़ खोल दिये। शायद आज ही लौटने की सरदार की आशा न थी।

'मान, उम्मीद से पहले ही कर्नल साहब हमारे यहाँ आये हैं। तो भी हमारी ओर से कमी न होनी चाहिये।'

'मान' स-संभ्रम हट गया।

वे दोनों कमरे में पहुँचे। नीचे फूस था। दो मामूली खाटें पड़ी थीं। बिस्तरे के नाम पर भी उन पर कुछ था। खूँटी पर हरीकेन लालटेन लटक रही थी। एक जंगली मेज़ थी। उस पर कुछ काग़ज़, एक डायरी, एक पेंसिल,—ये चीज़ें थीं। हाँ, एक आले में रामायण की छोटी-सी जिल्द थी। कमरे-भर में और कुछ न था।

कर्नल साहब को जिस खाट पर बैठाया, उसी पर

शमशेर आप बैठ गया। मेज़ को खींचकर दोनों के बीच में कर लिया।

मान आया तो उससे कहा—पहले साहब के लिये अच्छा बिस्तर लाना होगा।

साहब हिन्दी खूब जानते हैं, और अब वह बहुत बन्द रहना भी नहीं चाहते। पर शमशेर जो उन्हें राजधर्म और समाज-शास्त्र की चर्चा में खींच ले जाना चाहता है, उसमें वह नहीं पड़ना चाहते। वह शमशेर के बारे में सोचते हैं—'यद्यपि, सामग्री अच्छी है, पर परिस्थितियाँ अनुकूल न मिलीं। इसी से आज यह डाकू है। बेचारा!... कहीं शिक्षा पाई होती, तो कितना सुन्दर नागरिक आज यह होता!'

इसी समय शमशेर कह रहा है—...शिक्षा! आज इसने हिन्दुस्तान को क्या बना दिया?...हृदय की सारी विभूति को यह चूस लेती है, आदमी को दंभ करना सिखाती है, वास्तव से हटाकर नक़ल करना सिखाती है; अपने शब्दजाल में सचाई को ढक लेती है, और अपने बड़े-बड़े कोषों और ग्रन्थों को दिखलाकर आदमी को उलझा लेती है। ...यह विद्या आदमी की सबसे बड़ी दुश्मन है।...आज एक बहुत बड़ी विद्या का नाम है—क़ानून। हज़ारों-लाखों १॥-१॥ फुट ऊँचे पोथे उसके तान-बाना पूरने में बन चुके हैं।...और कर्नल साहब, आपकी

उद्देश्य उद्देश्य उद्देश्य

उस सारी क़ानून की विद्या का उद्देश्य क्या है ? क्या स्वतन्त्रता का कुचलना नहीं ? वह स्वतन्त्रता जो हमें परमात्मा ने दी है और जिस-तक पहुँचना इस विश्व की सार्थकता है।...क्या यह विद्या, उनको, जो अन्यायी हैं, पर ज़बरदस्त हैं,—सिर पर चढ़ाने ; और, उनको, जो न्यायी हैं, इसलिए चुप हैं,—पैरों-तले कुचल डालने के-ही काम नहीं आती ? क्या सत्य की हत्या के काम में नहीं आती ? क्या... ?

कर्नल ने शांत-भाव से कहा—शमशेर, ज्यादा बोलो नहीं। थोड़ा दूध पीकर सो लो। घाव को आराम होने दो।

शमशेर—आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं आपसे पूछता हूँ, आप इस क़ानून का कैसे समर्थन कर सकते हैं ? आज दुनिया इससे पिस रही है, क्या आप यह नहीं देख सकते ? क्या... ?

कर्नल ने कहा—घाव का जोखम मत बढ़ाओ, शमशेर, ज़रा चुप रहो।

शमशेर ने उसी आवेश में कहा—क्या आप नहीं देख सकते कि क़ानून में भाव हक़ का है, प्रेम का नहीं। आँख अपराध पर है, समता पर नहीं। अंकुश त्रस्त पर है, शासक पर नहीं। वह चक्की है, जिसे एक पीसता है तो दस पिसते हैं। आप क्या पीसने वाले की मुट्ठी मज़बूत कर सकते हैं, और कुछ नहीं कर सकते ? क्या...?

कर्नल ने कहा—चुप, देखो वह तुम्हारा मान आ रहा है।

मान कर्नल साहब की हैसियत के उपयुक्त बिस्तर ले आया है और दूसरी खाट पर बिछा देता है।

इससे पहले कि शमशेर कुछ कहे, कर्नल बोलते हैं—

'तुम्हारा नाम 'मान' है? देखो, अपने सरदार के लिये दूध लाओ। उन्हें सख़्त चोट आई है।'

तब शमशेर ने कहा—देखते नहीं?—साहब के लिए जल्दी कुछ लाओ।

मान गया। कर्नल ने कहा—मैं अब तुम्हें बोलने न दूँगा।

शमशेर ने कहा—आप उस बिस्तर पर जाइए।

कर्नल ने कहा—नहीं। आहत का कुछ अधिकार होता है और फिर मैं जानवर नहीं हूँ। तुम उस पर आराम से सो सकोगे।

'नहीं।'

'नहीं।'

इस 'नहीं' पर शमशेर की आँखों में दो बूँद आँसू आ गये। कहा—साहब, मैं डाकू हूँ, पर गरीब हूँ। मेरे लिये वह बिस्तर नहीं है।

इस पर कर्नल चुपचाप उस खाट पर चले गये।

अब दोनों चुप थे। दोनों कुछ सोच रहे थे। दोनों

कुछ पा रहे थे। इतने में मान बाक़ायदा ट्रे-कप, काफ़ी और टोस्ट के साथ आया। एक सकोरे में दूध भी था।

कर्नल ने कहा—मुझे भूख नहीं है, मैं नहीं खाऊँगा।

शम०—ऐसी रूखी मेहमानी कभी न मिलेगी, मेरे पास और क्या है ?'

'नहीं, सो बात नहीं। मुझे जरूरत नहीं है।'

'साहब, मेरी मिहनत का पैसा है। सच्चा पैसा है—आप यक़ीन रक्खें !'

कर्नल—शमशेर, मुझे ज़रूरत नहीं है।

इस पर शमशेर ने मान से कहा—मान, तो सब चीजें ले जाओ। मुझे भी ज़रूरत नहीं है।

मान ले जाने की तैयारी में लगा। कर्नल ने देखा—इस आहत सहृदय व्यक्ति की ख़ातिर सब कुछ करना होगा।

उन्होंने कहा—तुम्हें ज़रूरत है, शमशेर।

'नहीं।'

कर्नल ने मान से कहा—अच्छा रहने दो, तुम जाओ।

कर्नल ने बिना कुछ कहे-सुने अब खाना शुरू कर दिया। वह भी अपना दूध पी गया।

कर्नल साहब ने फिर शमशेर की खाट पर आकर उसकी पट्टी ठीक की। फिर वहीं बैठकर उसे सो जाने का अनुरोध करने लगे। शमशेर ने आपत्ति न की। अपने लबादे में से पिस्तौल निकाल कर मेज पर रख दी और

कहा—मैं समझता था, आप मेरे बन्दी हैं ; पर देखता हूँ. उल्टे मैं आपका बन्दी हो गया हूँ। और फिर मैं बन्दी का करता भी क्या ? ऐसे बहादुर को हत्या का पाप क्या मैं उठा सकता हूँ ?

थोड़ी देर बाद वह खुर्राटे लेने लगा।

कर्नल अपनी खाट पर आ गये। पर सो न सके। उन्होंने कमरे के चारों तरफ देखा। दर्वाजे के बाहर देखा। कोई पहरेदार नहीं है, कोई डर नहीं है। पिस्तौल देखी। बिल्कुल नई कारीगरी की है ; पाँच कारतूसों की, और पाँचों भरे हैं। देखकर फिर मेज़ पर रख दी।

कुछ सोचकर फिर पेंसिल उठाई, खुले काग़जों में सब से ऊपर कुछ लिखा और साढ़े सात आने पैसे गिनकर मेज़ पर रख दिये।

मन में कहा—'शमशेर और हम दोस्त नहीं हो सकते। दुश्मनी ही हमें जेबा देती है ; लेकिन मैं तुम्हें ग़लत नहीं समझूँगा, शमशेर ! फाँसी दिलवाऊँगा, तब भी गलत नहीं समझूँगा।' और फिर वह एक बार चारों ओर निगाह डालकर वह झोंपड़े से बाहर हो गये।

दरवाजे से उनके निकलते ही शमशेर ने झपटकर कागज़ उठा लिया। लिखा था—

रोटी, दो टोस्ट	तीन आने
मक्खन	डेढ़ आने

काफ़ी, डेढ़ प्याला	ढाई आने
शक्कर	दो पैसे
	कुल ७॥ आने नक़द

पढ़कर उसे सोच आया—तो क्या उसे आतिथ्य का अधिकार भी नहीं है ?

शमशेर का जी भर-सा गया। फिर मन में उसने कहा—कर्नल, तुम कब समझोगे, मैं तुमसे कम सच्चा नहीं हूँ। समाज के लिये भी तुमसे कम आवश्यक और कम उपयोगी नहीं हूँ।

और, कोई आध घन्टे-बाद उसने जगाकर अपने आदमियों को हुक्म दिया—यहाँ से जल्दी कूच कर देना होगा।

सबेरे सूरज निकलते-न-निकलते वहाँ सुनसान हो गया। आदमी का निशान भी न था।

कोई ग्यारह बजे वहाँ पुलिस का धावा हुआ। खुद ज़िले के पुलिस कप्तान कर्नल ग्रेटहार्ट साथ हैं। पर पहाड़-सी आशाओं के नीचे वहाँ चूहा भी न निकला। तिनके-तिनके को उलटा-पलटा, पर कुछ न मिला।

मिली तो वह कर्नल साहब को ७॥ आने की चिट्ठी।

चिट्ठी लेकर कर्नल ने किसी के सुनने-न-सुनने को पर्वाह किये बग़ैर कहा—शमशेर बहादुर ही नहीं, होशियार भी है।

[३]

लेकिन कप्तान साहब की शिकायत की गई है। उन्हें एक चिट्ठी मिली है—'कर्त्तव्य से च्युत होना अफसर के लिये बड़े खेद की बात है। उनके-जैसा मुस्तैद अब तक 'शमशेर' को पकड़ने में कामयाब न हो। सुना जाता है, उन्होंने ढील से काम लिया है। यह बताने की जरूरत नहीं, किस तरह शमशेर समाज के लिये जहर साबित हो रहा है, किस तरह यह जहर फैलता जा रहा है, और किस तरह उसका स्वच्छन्द रहना अत्यन्त भयङ्कर है। महीने के भीतर वह नहीं पकड़ा गया, तो उनका तबादला कर दिया जायगा।'—यह चिट्ठी का भावार्थ है।

कर्नल साहब ने अपने समाज-शास्त्र के ज्ञान की सहायता से, तर्क की सहायता से और बड़े अफसरों की डाँट के पत्र की सहायता से अपनी कर्तव्य-बुद्धि को और सचेत कर लिया है।

उन्होंने तय कर लिया है—समाज की रक्षा का दायित्व उन पर है। कानूनन शान्ति रक्षा के वह उत्तरदाता हैं। और कानून हर किसी के हाथ में नहीं दिया जा सकता। किसी को उसे अपने हाथ में ले लेने की स्वतंत्रता नहीं हो सकती। इसके अर्थ अराजकता, अनियन्त्रण, धांधलबाजी होंगे। और यह धांधली कभी श्रेयस्कर नहीं।

प्रकृति-भर में उसे स्थान नहीं। वहाँ भी नियम का राज्य है।... तो शमशेर बहादुर है, तो क्या उसे फाँसी अवश्य लगेगी।

भेदिये ने खबर लाकर दी है। आज कर्नल साहब अपने चुने हुए पन्द्रह आदमियों के साथ शाम से ही उस मकान को घेर लेंगे। कानो-कान खबर न होने पायेगी। वह खुद हिन्दुस्तानी लिबास में जायँगे, और उनके सिपाही भी मामूली गँवार के भेष में पहुँचेंगे।

[४]

शमशेर अपनी एक माँ के यहाँ है। उसके अपनी न माँ है न बाप है। वह छोटा था, जब दोनों उसे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये। दोनों साथ-साथ नहीं गये, अलहदा-अलहदा गये। वे दीन थे; गाँव में रोटी का कोई धन्धा न जुड़ सका। इसलिये अपने इकले भाग्य को आजमाने के लिये दोनों को बिछुड़ जाना पड़ा। फिर उनका मिलना न हुआ। बालक मोहन बहुत दिनों तक अपनी माँ के साथ रहा। लेकिन जब एक समय तीन रोज तक दोनों माँ-बेटों को खाने को कुछ न मिला, तो माँ ने सोचा—माँ की गोद से तो बेटा शायद परमात्मा की गोद में-ही भला रहे। और वह जी कड़ा करके जंगल में सोते मोहन को अकेला छोड़कर चल दी। उसके जगने पर इस एक माँ ने-ही उसे रोता पाया था, और आश्रय दिया था।

४

कौन जाने, आज शायद माता, पिता और पुत्र तीनों-हो जीवित हों--पर कहाँ, कितनी दूर ? किसी को एक-दूसरे का पता नहीं।

तीनों एक रक्त, एक प्राण, एक अस्तित्व में बँधे तीन प्राणी हैं ; किन्तु आज तीनों के बीच भाग्य के कैसे विषम महासागर आ फैले हैं। तीनों जीवित ; पर तीनों के लिए तीनों मरे से भी अधिक...हाय, दरिद्रता ; हाय, दया ; और हाय, ओ ईश्वर !

आज शमशेर अपनी उन्हीं माँ के यहाँ है, जिन्होंने उसे अपना वात्सल्य देकर, और सब-कुछ देकर बड़ा बनाया है ; और जिन्हें अपने हृदय की सारी भक्ति और सेवा देकर उसने अपनी माँ बनाया है। माँ अब वय से जर्जर हो चली हैं। इधर वह बहुत दिनों से उनकी खबर नहीं ले सका है। उसका व्यवसाय-ही ऐसा है, या कहिये, उसका नाम ही ऐसा है। आज वह सब ख़तरों और सब सङ्कटों को स्वीकार करने के लिये कटि-बद्ध होकर माँ के पास आया है। माँ अब बहुत दिनों-तक नहीं रहेगी ; उसने भी निश्चय कर लिया है, उसे भी, बहुत दिनों-तक नहीं रहना है। यहाँ आते समय उसने अपने से कहा था—जीवन का लोभ ! छिः शमशेर ! तू इतना निकृष्ट है ! तू ने कहा था न, कि तुझे अतिथि होकर दुनिया में रहना होगा। न-जाने कब यहाँ से डेरा उठाने का वक्त आ जाय।

SAG: 1950

इसलिये अब निश्चिन्तता से वह माँ की सेवा करने आया है।

इधर शमशेर के बहुत काल से खबर न लेने से माँ बहुत बिगड़ रही थीं। सोचती थी—यह कहूँगी, वह कहूँगी; लेकिन जब आते-ही शमशेर ने कुछ हँसती और कुछ रुँधी आवाज़ से कहा—

'अम्मा कैसी है तू ?'—तो उन्हें बिगड़ने की याद जाती रही और उन्होंने गद्‌गद कंठ से पूछा—

'कहाँ रहा रे ?'

माँ, उस सब हास्य के, उस सब प्यार के बावजूद जो वह अपने बेटे पर बरसाती हैं, दिन-दिन चीण होती जा रही हैं, यह जानने में शमशेर को देर न लगी। वह और भी सचिंत, संलग्न-भाव से उनकी सेवा करने लगा।

रात को वह दो-दो बजे तक खुद माँ की सेवा में रहता; पैर दबाता, कहानी सुनाता, और सुनता। माँ को कहानी कहना जितना रुचता था, उससे कम सुनना नहीं। और शमशेर के लिए तो इससे बड़ा सौभाग्य न था।

रात के बारह बज गये होंगे। माँ को नींद न आती थी। पैताने बैठकर शमशेर तलुओं में मालिश कर रहा था। उसने कहना शुरू किया—

'माँ, सुन। देख, सोना मत। कहीं तू सो जाय, और मैं कहता-ही रहूँ।'

फिर एक कहानी सुनाई। एक राजा था—सात लड़के थे। छोटा अपनी माँ को बहुत मानता था, राजा को नहीं। राजा ने नाराज होकर उसे देश-निकाला दे दिया। रानी के लिए सूना हो गया। उसका जी किसी काम में न लगता। अन्त में वह भी जंगल में चली गई। जंगल में एक रोज उसका बेटा मिल गया। उसे बड़ी खुशी हुई। अब उसे कहीं न जाने देती, अपने पास ही रखती और सब काम ख़ुद करती। उसे डर लगा रहता था—कोई उसे, उठा न ले जाय। एक रोज की बात—रात का वक्त था कि एक दैत्य आ खड़ा हुआ। डरावना मुँह था, लाल-लाल आँखें...

माँ एक-दम चीख मार मूर्छित हो पड़ी।

शमशेर चिल्लाया—माँ ! माँ !!

किसी ने कहा—शमशेर, तुम्हें गिरफ्तार कर लूँ, तो क्या हो ?

शमशेर ने मुड़कर देखा, कर्नल हैं। उसने बड़ी आजिज़ी से कहा—साहब, यह मर जायगी।

'दया माँगते हो ?'

'अपने लिये नहीं।'

'यह कौन है ?'

'पुत्र-हीना एक माँ है, मेरी माँ है।'

'अच्छा भागने की कोशिश तो न करोगे ?'

'माँ को छोड़कर कहीं न भाग सकूँगा।'

'अच्छा, अपनी पिस्तौल दो। तुम शैतान हो।'

शमशेर ने अपनी पिस्तौल जेब से निकाल कर दे दी।

'अच्छा,अब मैं जाता हूँ।—और देखो, यह लो। इसको सिर पर मालिश करना; गश दूर हो जायगा। और इस शीशी में टॉनिक है। रोज देना—दूध के साथ। बदन में ताकत आवेगी। मैं जाता हूँ।'

गए—और जाते-जाते लौट आए। आकर कहा—देखो, अपनी माँ से निबटकर तुम अपने को मुझे सौंप दोगे, इसका वचन दो। मैं तुम्हारा विश्वास करना चाहता हूँ।

'अपनी बेहोश माँ के पैरों में सिर डाल कर वचन देता हूँ।'

'माँ की ख़बरदारी रखना।'

कर्नल चले गये।

दवा की मदद से माँ को कुछ देर बाद होश हुआ।

आँख फाड़कर माँ ने पूछा—बेटा, बेटा! वह कहाँ गया?

'कौन माँ?'

'वही तेरा कहानीवाला दैत्य! डरावना मुँह, लाल-लाल आँखें! बेटा मैं डर गई। तो वह तुझे लेने नहीं आया था?'

'मेरी माँ, मैं कहानी भूल गया था। वह दैत्य नहीं, देवता था।'

[५]

कर्नल ग्रेटहार्ट ने मकान से बाहर आकर अपने आदमियों को इकट्ठा किया। कहा—भीतर कोई डाकू नहीं मिला, अब यहाँ से चल देना होगा।

सिपाहियों को आराम से रात बिताने में कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। कर्नल के साथ वापिस चलने को तैयार हो गये। इसी समय एक करारी आवाज आई—'ग्रेटहार्ट !'

कर्नल मुड़े। देखा—उसके अफसर सर सेवेज हैं।

कर्नल ने कहा—सर, आप !

'जी, मैं ही, और कोई नहीं।'

'आज्ञा...?'

'...तो शमशेर मकान में नहीं है ?'

'मुझे तो कोई डाकू अन्दर नहीं मिला।'

'झूठ बोलते हो...'

'झूठ मैं नहीं बोला करता।'

'अच्छा, चलो, मेरे साथ अन्दर चलो।'

कर्नल सर सेवेज के साथ फिर मकान में गये।

शमशेर अब दुगने प्यार से, दुगने चाव से और दुगने सोच के साथ माँ के पैर मलता-मलता यही कहानी पूरो

कर रहा था। उसे देखते-ही सेवेज ने कड़कती आवाज में कहा—ग्रेटहार्ट, यू ट्रेटर, * यह शमशेर नहीं तो क्या है ?

'जी, मैं नहीं जानता। यह अपनी माँ का बेटा है। मैं इसे डाकू नहीं समझ सका।'

माँ आवाज सुनकर और इन दोनों की सूरतों को देख कर एकदम सहम गई। मुँह से बोल न निकला। मूक-मूढ़ इन्हें देखती रही। जब उसने सर सेवेज की मुद्रा भली प्रकार देख पाई तो दहशत से काँप गई। जोश में एकदम बिस्तर से उठ बैठी, और शमशेर को अपने सारे अवशेष बल से चिपकाकर चिल्ला पड़ी—बेटे !

सेवेज ने रिवॉल्वर तान कर कहा—शमशेर, अलग हो, मैं बुढ़िया को नहीं मारना चाहता।

शमशेर ने कहा—ज़रा ठहरिये !

माँ बेटे को गोदी में छिपाने की कोशिश कर रही है, और स्वयं भी मानों उसमें छिपना चाह रही है।

कर्नल—सर, ही उड सरेण्डर।

(सर, वह अपने को सौंप देगा।)

सेवेज—यू डेविल्स बोथ ! गेट अवे यू ट्रेटर।

(ओ शैतान, दूर हट दगाबाज़ !)

कर्नल—सर, माइण्ड, यू डोण्ट किल हिम।

(सर, सावधान, उसे मार न दें।)

---

* ओ धोखेबाज।

सेवेज—यू इनफ़ाइड्ल ! अवे विद यू एन्' यो' पिटी।

(ओ बेईमान, अपनी दया लेकर दूर हो !)

कर्नल ने, रोकने के लिए, अभी अफ़सर की बाँह को छुआ-ही था कि रिवॉल्वर का घोड़ा दबा। आग की लपकती हुई जीभ-सी बाहर निकली। लेकिन निशाना जरा टेढ़ा हो गया। गोली जर्जरित माँ की हड्डी-पसलियों को तोड़ती हुई सीने के आर-पार हो गई। क्षण के बहुत-ही सूक्ष्म भाग-तक छटपटाकर, शमशेर की बची-खुची, मुट्ठी-भर जीर्ण-शीर्ण हड्डी और देह की माँ—ठण्डी हो गई। शमशेर दर्द-भरी आवाज में चिल्लाया—'माँ ! माँ !!' फिर सँभलकर कहा—कम्बख़्त य' तैने क्या किया ?

सर सेवेज को अफ़सोस करने की फुरसत नहीं थी। शमशेर को बचा देख, वह दूसरे फ़ायर की तैयारी कर रहे थे, लेकिन तो भी जरा ठिठक रहे थे। कर्नल हत-बुद्धि खड़े थे, और सुन्न-से शमशेर को देख रहे थे।

शमशेर और भी सँभला। कहा—जाओ, साहब, जाओ ! मेरी माँ मुझे अब न मिलेगी, तो भी आप जाओ।

सेवेज—गेट रेडी, आई फ़ायर।

(तैयार हो, मारता हूँ गोली।)

शमशेर—साहब, मुझे व्यर्थ हत्या मत दो। देखो, चले जाओ।

सेवेज—टॉक अवे, डॉग। आई ब्लो दाऊ अप इन ए सेकण्ड।

(बक ले। एक सेकेण्ड में मैं तुझे उड़ा दूँगा।)

शमशेर—देखो, यह तीसरी बार है। अब भी वक्त है। चले जाओ।

सेवेज—ओ, इट् गेट्स लेट। लेट मि फ़िनिश।

(देर हो रही है। लाओ, ख़त्म कर दूँ।)

शमशेर ने माँ के ताजे लहू में हाथ रँगे और सिंह की तरह पलक-मारते सेवेज पर झपट पड़ा। घोड़ा दबे-न-दबे उससे पहले अफसर का हाथ शमशेर के कब्जे में था।

'यू कर्नल, ह्वाट दि डेविल आर यू स्टेयरिंग ऐट ?'

(कर्नल, क्या ताक रहा है ?)

मिनट-भर में अफसर को नीचे पटककर उनका रिवॉल्वर शमशेर ने अपने हाथ में कर लिया। फिर उसकी ओर तानकर कहा—

'साहब, तुम मरना चाहते थे, लो मरो। लेकिन ज़िन्दगी में मेरी यह पहली हत्या है।'

कर्नल ने अब जैसे जाग कर कहा—शमशेर, खबरदार !

शमशेर अफसर को नीचे दबाये रहा। कर्नल की ओर देखकर कहा—क्या है कर्नल ?

'शमशेर, हत्या न कर सकोगे।'

'कर्नल, यह हत्यारा है, मेरी माँ को इसने मारा है।'

'ठीक है। तुम्हारी माँ नहीं आयेगी। इसके मारने से भी नहीं आयेगी।'

'कर्नल, इसने मेरी माँ को मारा है, मेरी माँ को! क्या तुम यह समझोगे?'

'शमशेर! तुम मर्द हो न? आँसू पोंछो, छोड़ो, खड़े हो, हत्या मत लो।'

'कर्नल, तुम मुझे और गुस्सा क्यों दिला रहे हो?'

'छिः! शमशेर!'

'चुप, कर्नल—चुप! मैं इसे मारूँगा—जीता न छोड़ूँगा।'

'शमशेर, एक बात सुनो। इसकी एक माँ है। वह घर पर बैठी होगी। सोचती होगी, मेरा बेटा अब आयेगा, अब आयेगा। तुम इसे मार दोगे तो, शमशेर, उस माँ का क्या होगा?'

शमशेर कुछ रुका। फिर क्या हुआ कि चिल्ला पड़ा—'ओह, कर्नल!' और रिवॉल्वर फेंक, अफसर छोड़, उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया और फूट-फूटकर रोने लगा। फिर माँ के वक्षस्थल से निकलते हुए लाल-लाल लोहू में लोट-लोट कर उसने कहा—अरी माँ, सुन। मैं कभी किसी को न मारूँगा।

• • •

सेवेज साहब उठ गये। कपड़े झाड़-पोंछ लिये। अब उन्हें सीधे घर पहुँचने की ज़रूरत सूझती थी। उनकी माँ से उन्हें और कुछ लाभ हुआ या न हुआ, पर यह लाभ बहुत-ही जबरदस्त हुआ। उन्होंने सोचा—माँ को चलकर एक हिन्दुस्तानी के पागलपन को बात सुनायेंगे। लेकिन कर्नल ने उन्हें रोक लिया। कहा—

'शमशेर को अब गिरफ़्तार करना होगा। उसका वक्त अब आगया है।'

शमशेर जब ज़रा शांत-चित्त हुआ तो कर्नल ने पास पहुँच कर कहा—चलो शमशेर, अब हमारे साथ चलो। अब तुम्हारी गिरफ़्तारी का वक्त आगया है।

'साहब, मुझको माँ का क्रिया-कर्म करना होगा।'

कर्नल—शमशेर, दुनिया का मोह अब न करो। चलो, नहीं तो देर होगी।

शमशेर—साहब...साहब, बिरादरी !...और... आप...

कर्नल—हम ईसाई हैं, तुम हिन्दू हो—यही न? छिः, इसका भी लोभ तुम्हें बना है! जिन्दगी का मोह छोड़ा, बिरादरी का अभी बना-ही है!

शमशेर—साहब! यह न होगा।

कर्नल—न होगा? मैं तुम्हें मर्द समझता था, क्या यह समझना गलत होगा? नहीं, मैं तुम्हें कमज़ोर नहीं

बनने दूँगा। ...सिपाही! ...तीन आदमी इधर आओ। इन्हें गिरफ्तार करो।

शमशेर ने माँ के पैर से माथा रगड़कर हथकड़ियों के लिए हाथ आगे कर दिये। दोनों हाथ हथकड़ियों से जुड़ गये। पाँच आदमियों ने चारों तरफ होकर उसकी जंजीरें सँभालीं। और जब कैदी बाहर निकला तो एक जुलूस-का-जुलूस उसके साथ था। दस सिपाही आगे, दस पीछे, पाँच साथ। सेवेज सबसे आगे; और कर्नल सबसे पीछे।

कैदी रो नहीं रहा है। कर्नल भी रो नहीं रहे हैं।

सेवेज गर्व से भर रहे हैं। सोच रहे हैं—अपनी विजय कैसे कहूँगा, कैसे छपाऊँगा। शमशेर को पकड़ना और किसी के लिये क्या सम्भव था? क्या सम्भव है?

[६]

सवेरा हो आया है। सूरज उतना-ही लाल और उतना-ही गरम है। हवा भी वैसी-ही तेज और वैसी-ही ठण्डी है। लेकिन मालूम होता है, ओस आज रात रोज से जरा ज्यादा रोई है, धरती मामूल से ज्यादा भीगी है। दरख्त भी जैसे अभी-अभी आँसू बहा चुके हैं।

जुलूस चल रहा है।

नदी का पुल आया है। पानी का यहाँ सुभीता रहेगा। मञ्जिल सख्त हो चुकी है। यहाँ थोड़ा विश्राम कर लें।

सेवेज खुशी में फूल रहे हैं, और अपनी डींग की बातें सोचने में मस्त हैं। कर्नल साहब हठात् क़ैदी की पर्वाह नहीं करना चाहते। क़ैदी अपने पाँचों रक्षकों की रक्षा में सुरक्षित है।

उसे प्यास लगी है, वह पानी पीना चाहता है। रक्षकों की परीक्षा का अवसर आया है। लेकिन वे अपने अधिकार को तत्परता के साथ निबाह रहे हैं। वह जानते हैं—शमशेर को बन्दी रखना कोई छोटा अधिकार नहीं है। जंजीरें उन्होंने कस के पकड़ ली हैं, हथकड़ियों को एक निगाह देख लिया है, और नपे-नपे कदम से सतरह आदमियों की अत्यन्त बारीक, तत्पर और एकाग्र दृष्टि की कैद में कैदी को किनारे तक ले जाया जा रहा है।

किनारे पर पानी पीने को कैदी झुका—लेकिन, क्या हुआ !

मुट्ठी वैसे-ही सख्त बँधी है, जंजीरों पर जरा भी खिंचाव नहीं पड़ा है, बीसों आँखें वहीं-की-वहीं जमी हैं, लेकिन—देखते-देखते मानों जादू के बल से हथकड़ियाँ अलग जा पड़ी हैं, और कैदी झपटकर पानी में अदृश हो गया है !

क़ैदी फ़रार हो गया ! क़ैदी फ़रार हो गया !!

'कैदी फ़रार हो गया' का शोर चारों दिशाओं में गूँज उठा। लो दौड़ो, यह करो, वह करो—कैदी फ़रार हो गया। मानों आकाश और धरती दोनों एक स्वर से यही गुँजाने

लगे। लेकिन किसी को सबेरे-ही-सबेरे उस ठण्डे पानी में उतरने की न सूझी! इतने में कैदी न-जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया। जब लोग पानी में कूद-कर जैसे-हो-वैसे कैदी को पकड़ लाने को तैयार हुए, तब उन्हें यह समझने में देर न लगी कि अब उसका कुछ परिणाम न होगा और व्यर्थ साहस करने की आवश्यकता नहीं है।

जितनी देर में यह शोर उठा और खतम हुआ, उतनी देर में सेवेज साहब के बड़े ऊँचे-ऊँचे किले गिरकर तहस-नहस हो गये। और उनकी वेबूझ खुशियाँ गुस्से में बदल गईं और वह गुस्सा उतरा कर्नल साहब पर।

'कर्नल, तुमने कैदी को क्यों भाग जाने दिया?'

'मैंने? नहीं, कभी नहीं।'

'फिर वह कैसे भागा?'

'मालूम होता है, जरूर किसी शैतान की मदद से।'

'शैतान! वह शैतान का साथी है?'

'और नहीं तो क्या?'

'कर्नल, वह बड़ा खूँख़्वार आदमी है।'

'साहब, वह कहता था—मैं ज़रूर तुम्हारे अफ़सर को मारूँगा।'

'हाँ?'

'हाँ।...सर, आपने उसकी माँ को मारा; ठीक न किया। वह ज़रूर कुछ-न-कुछ आफ़त करेगा।'

'अह ! हम डरता थोड़े ही है ! ...लेकिन यह जंगल ठीक नहीं है, हमको जल्दी अपनी जगह पहुँचाना चाहिए।'

विश्राम उखड़ गया और तेज़-रफ़्तार से अफ़सर साहब बँगले पर पहुँच गये।

[७]

कर्नल ग्रेटहार्ट की बदली हो गई है। उन्हें बर्मा के किसी जिले में भेज दिया गया है। उनकी जगह दूसरे अफ़सर आये हैं। यह अपने हस्ताक्षर A. Fairish (ए० फ़ेरिश) करते हैं; लेकिन उनका नाम यह नहीं है। वह अँग्रेज से ज्यादा अँग्रेज हैं। उनसे बढ़कर ठाठ से रहते हैं, उनसे गोल अँग्रेजी बोलते हैं, उनसे बिगाड़कर उर्दू बोलते हैं और उनसे ज्यादह बार खाना खाते हैं। सिर्फ़ ज़रा कम गोरे हैं, इससे कोई उन्हें हिन्दुस्तानी समझे—यह वह पसन्द नहीं करते।

नये अफ़सर बहादुर हैं, या नहीं हैं; वह होशियार अवश्य हैं। उनकी अफ़सरी-ही इस बात की है। उन्होंने अपनी जिन्दगी में एक बार नहीं खाया है, और केवल एक बार गोली चलाई है। और वह तब जब खतरा न था। फिर भी बहुत से दुर्दान्त डाकुओं के पकड़ने का श्रेय उन्हें मिला है। उनकी इस प्रसिद्धि के कारण-ही इस जिले में उन्हें भेजा गया है।

जब से अफ़सर आये हैं, तब से बँगले से बाहर नहीं निकले। बँगले पर सख़्त पहरा रहता है और जब वह टहलने को बाहर निकलते हैं, तब पहरा भी साथ टहलता है; परन्तु अफसर साहब सरगर्मी से तदबीर सोचने में लगे हुए हैं। पहले दिन से ही वह इस तरफ चुस्त हैं। उन्हें यकीन है—अगर वे शमशेर से बचे रहे, तो शमशेर उनसे न बच सकेगा।

रात के ११ बजे एक व्यक्ति उनसे मिलने आया है। अपने खास कमरे में वह उनसे बातें कर रहे हैं।

'कहो, क्या हुआ ?'

'जी, मुझसे न हो सकेगा।'

'न हो सकेगा ?—क्यों ?'

'साहब, वह मेरा दोस्त है।'

'दोस्त है, इसीलिए तो काम तुम्हारे लिए और आसान है।'

'साहब, लोग मुझे जीता न छोड़ेंगे।'

'किसी को कानों-कान खबर न होने पायेगी।'

'साहब, रुपये किस काम आयेंगे, जब अपने स्त्री-पुत्र ही अपने न रहे।'

'क्या लोग उसे इतना पसन्द करते हैं ?'

'साहब, गाँव में कौन ऐसा है, जिसका उसने कुछ-न-कुछ भला न किया हो।'

'तो कहो, तुम नहीं कर सकते।'

'नहीं कर सकता।'

'देखो १०,००० थोड़े नहीं हैं। और ज़मीन दिलवा दूँगा।'

'जी नहीं।'

'नहीं? अब के 'नहीं' कहा तो जेल में डलवा दूँगा।'

व्यक्ति अविचलित—चुप।

'खैर, मैं दस मिनट की और मुहलत देता हूँ। सोच लो।'

अफसर चले जाते हैं और व्यक्ति सोचता है। सोचता है—क्या वे आँखें आज न दीख पड़ेंगी? जब-जब मैं आया, तब-तब वह मेरे रास्ते किसी-न-किसी तरह आ गई। क्या आज अप्रकट-ही रहेंगी?

थोड़ी देर में धीरे से दर्वाजा खोल जुलेका अन्दर आई।

'मैं तुम से बातें करना चाहती थी।'

व्यक्ति मूढ़ हो रहा।

'तुम शमशेर को जानते हो?'

'जानता हूँ।'

'वह कैसा है?'

जुलेका ने जल्दी छुट्टी न दी। एक-एक बात उसने पूछी। और प्रत्येक जानकारी पर उसकी बेचैनी बढ़ती गई। अन्त में उसने पूछा—

'उसकी घरवाली कैसी है ?'

'उसकी घरवाली नहीं है।'

'उसने शादी नहीं की ?'

'नहीं।'

'वह ऐसा है ?...'

'वह औरत से डरता है।'

बग़ैर रुके जुलेका ने पूछा—तुम उसके दोस्त हो ?

'मैं उसे जानता हूँ।'

'तुम मेरी दोस्ती पसन्द करोगे ?'

व्यक्ति का रोम-रोम चाह से और लाज से सुन्न हो रहा।

जुलेका ने एक-दम उसका हाथ पकड़कर कहा—तुम मेरी दोस्ती नहीं चाहते ?

व्यक्ति चुप।

'मेरी एक बात मानोगे ?'

'......... ?'

'मानोगे ?'

व्यक्ति ने अपनी अन्तःकरण की लालायित स्वीकृति आँखों में भरकर, ज़रा,-ज़रा पलक उठाकर देखा,—यौवन के वसन्त में कुन्द की यह कली कैसी विवशता से खिल रही है !

'मानोगे ?...देखो शमशेर को ला दो। मैं देखूँगी वह कैसा है ?...कैसे वह फाँसी पर चढ़ता है !'

• • •

अफसर ने आकर पूछा— कहो, हवालात जाओगे। या...?

'जी, काम मुश्किल है, देखूँगा। लेकिन १५,००० दिलवाइये।'

'अच्छा।'

[८]

अफसर का बड़ा अस्त्र और बड़ी लड़की जुलेका है। साहब ने नाम को संस्कृत करके जुली रेवेका बना दिया है।

यह लड़की दिल की जगह आग लेकर आई है। इसने बहुतों को खींचा है। जो इसके सम्बन्ध में अपने सौभाग्य के परीक्षार्थी हुए हैं, इसने उन्हें जलाकर खाक कर छोड़ा है। लेकिन स्त्री है। चाहती है—कोई इस आग को पानी करदे। चाहती है—जलने का अन्त हो। तरल बनकर उसके बहने का समय आये। वह जल रही है, और ठंडक की प्यासी है। पानी नहीं चाहती, बुझना चाहती है। चाहती है, कोई हो, जो बर्फ के स्तूप की तरह उज्ज्वल हो, कठोर हो, और ठण्डा हो ; उसके जी के भीतर की जलती

आग को लपटें जिसके चरणों को छूकर, शीतल हो, आँसू बन चू जायँ, और वह वैसा ही धौला खड़ा रहे। जिसके पास से मिले कुछ नहीं, प्यास ठण्डी-भर हो जाय। इसी-लिये अपनी आग का सब पर प्रयोग करने को तैयार हो जाती है। इसीलिये अनायास वह साहब के हाथों बड़ा प्रबल अस्त्र साबित होती है।

दर्जे-पर-दर्जे पार करती हुई वह अब बी० ए० में पहुँच गई है। वह इस तरह कहाँ-तक बढ़ेगी, कहाँ-तक पहुँचेगी, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। कोई उसे नहीं जानता। अपनी मालिक वह ख़ुद है। हाय, कोई उसे मालिक नहीं मिलता!

पिता पर शासन करती है, उपन्यासों का अध्ययन करती है, और अपनी परीक्षायें करती है। इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं करती।

[६]

माँ का क्रिया-कर्म करने के बाद से शमशेर अदृश्य है, अगम्य है, शान्त है। दुर्लभ्य, वह जंगल में रहता है, और चुप रहता है। लेकिन आज वह—मैला, रूखा; किन्तु सुन्दर—गाँव में आया है। यहाँ उसका मित्र सजनसिंह रहता है। सजनसिंह अपनी शिक्षा के लिये काफ़ी सम्मान-

नीय व्यक्ति है। शमशेर का वह विश्वास-भाजन रहा है; विश्वास का पात्र भी रहा है।

मकान के अन्दर।

दोनों आसने-सामने दो खाटों पर बैठे हैं। शमशेर ने कहा—सजन भैया, मेरी माँ मर गई! तुम जानते हो, मेरे लिये वह कौन थी!

'शमशेर, अब किया क्या जा सकता है? भगवान् की मर्ज़ी! इतने खिन्न मत हो!'

'मैं बहुतेरा जी लिया। अब किसके लिये जिऊँ?'

'तुम्हारी बड़ी आयु है शमशेर।'

'आयु का मैं क्या करूँ, जब पुण्य-ही नष्ट हो गया। इसके बाद जीने की इच्छा करना, बड़ी विडम्बना है। माँ मेरी पुण्य-प्रतिमा थी। वह चली गई! जो स्नेही हैं, उन्हें भी कब-तक कष्ट दूँ? पुण्य क्षीण हो जाने पर उनकी मित्रता भी मुझे कब-तक प्राप्त होगी? सजन भैया, जीवन के पुण्य को खोकर, रस-हीन, मित्रता-हीन, उद्देश्य-हीन, और जीवन-हीन दिन बिताने से क्या लाभ? और सजन भैया, सरकार को मेरी जरूरत है, शायद नरक में भी मेरी जरूरत है।—और सजन, तुम जानते हो सरकार आदमियों के भले-बुरे की जिम्मेदार है। सजन, बहस न करो, मुझे एक बात कहने दो।'

'शमशेर, यह तुम क्या बक रहे हो?'

'मैंने क्या कभी बका है ?...यह तो मेरे बिल्कुल मन की बात है।'

'लेकिन क्यों ? तुम मित्र-हीन तो नहीं हो।'

'सजन भाई, शायद मित्रों को मेरी ज़रूरत नहीं। मेरी मित्रता उनके लिए भार है।'

सजन भैया ज़रा ठिठक गये।

'सजन, जानते हो, मेरे पास कुछ नहीं है। एक कच्चा मकान है। उसमें भी कोई दीन बेचारा आकर बस गया है। बस, एक चीज़ है। वह मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। और मेरा है कौन ?'

'आज तुम दुःखी क्यों हो शमशेर ?'

'मेरे पास १०,००० रुपये हैं। तुम्हारे सिवाय मैं वह किसी को न दूँगा।'

'——?'

'देखो, इन्कार न करो। स्वीकार करो, और मुझे दुनिया से बिदा लेने दो।'

सजन भैया टपाटप आँसू गिराने लगे। उन्होंने बहुत ज़ोर लगाकर कहा—

'जानते हो शमशेर, मैं तुम्हारी पंद्रह हज़ार क़ीमत लगा चुका हूँ ?'

'यह तो और भी अच्छा है। मेरे मित्र को पाँच हज़ार और मिलेंगे।'

सजनसिंह की रुलाई खुलकर फूट निकली।

शमशेर ने कहा—भाई, दुःखी मत हो। तुम धोखे से घृणा करते हो; मैं भी करता हूँ। लेकिन यह धोखा नहीं है। अगर फिर चित्त शान्त न हो, तो इन रुपयों को दीनों के काम में लाना। वह रुपया है भी तो दर-असल उन्हीं का—उन्हीं के लिए।

मित्र ने रोते-रोते कहा—तुम आये थे तब मैं सोच रहा था—तुम्हें कैसे पकड़ाऊँ? तब मुझ पर गाज क्यों नहीं गिरी!

शमशेर ने कहा—उस बात को इस भयानक रूप में मत देखो; जैसे मैं देखता हूँ, उसी रूप में देखो। मुझे मरना है—आज नहीं तो कल, मरना तो होगा ही। सरकार न ढूँढ़ पाये, यह असम्भव है। उसकी बड़ी-बड़ी बाहें हैं; बड़े-बड़े भेदिये हैं। पर यह सम्भव भी हो, तो भी मरना तो होगा-ही। हाँ, वैसे मरने से जो थोड़ा-बहुत उपकार अब भी मेरे हाथ में है, वह मैं न कर सकूँगा। अगर पकड़ा गया, तो यह मेरा रुपया—मेरे सिर का रुपया—न-जाने किसके हाथ पड़ेगा। इससे तो अच्छा, वह मेरे मित्र को मिले। और शायद वह मित्र उसका ठीक उपयोग कर सके।

सजन ने अत्यन्त त्रस्त होकर कहा—'हाय शमशेर...' और वह अधिक कुछ न कह सका।

शमशेर ने कहा—दुःख मत मानो। मैंने बहुत सोचा

है। और राह नहीं है। पाप की चेतना दूर करो। मत समझो, मित्र-घात कर रहे हो। समझो, मित्र की इच्छा पूरी कर रहे हो। वह इच्छा पूरी कर रहे हो, जिसके बाद इच्छा अशेष हो जायगी। सोचते होगे, मैं क्यों मौत चाहता हूँ? मौत ऐसी तुच्छ वस्तु है, कि उसका चाहना लज्जास्पद है। चाहने को मेरे पास उससे बड़ी वस्तु है। जीवन है, और मोक्ष है। मौत मोक्ष नहीं है, और मैं मौत नहीं माँगता। पर, मौत मोक्ष में रुकावट भी क्यों है? इससे, मौत को टालना भी मैं नहीं माँगता। देखता हूँ, उसका समय आया है। इस बारे में मेरे जी में भूल नहीं है। मेरी मौत से दुनिया की अर्थ-सिद्धि है, मेरी भी परमार्थ-सिद्धि है। विश्व का अर्थ सिद्ध करने व्यक्ति की मौत आती है। परमात्मा उसे भेजता है। व्यक्ति क्यों न उसे धन्यवाद के साथ ले और आगे बढ़े? और क्यों उस व्यक्ति का मित्र भी उसमें सहयोग न दे? यही करके तुम्हारे भीतर की पाप की ग्लानि अपनी आग से जलकर नष्ट होगी। और उपाय नहीं है। ...और, मैं क्या मोहन हुआ, जो एक क्षण के लिये भी मैंने अपनी मौत टालने की इच्छा या चिन्ता की? और तुम क्या मित्र हुए, जो अन्त समय मित्र के काम न आये?

सजन अतिशय कातर हो उठा। कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, शमशेर, मेरी रक्षा करो। मुझसे और कुछ मत कहो। मेरा परलोक मत बिगाड़ो। मुझे सँभलने दो।

शमशेर ने सजन के दोनों जुड़े हाथों को अपने हाथों में थाम लिया। उसकी डबडबाई आँखों में भरपूर देखते हुए कहा--नहीं-नहीं, सजन। मैं देखता हूँ, क्या होगा। वही होगा, जो कहता हूँ। यही सँभलने का मार्ग है। हिम्मत करो। मर्द की तरह सँभलो, मित्र की तरह काम करो। चलो, उठो...

शमशेर अपने मित्र सजन को पुलिस के पास ख़बर देने के लिये भिजवाकर-ही माना। इधर से शमशेर ने उसे धकेला, उधर से जुलेका की आँखों ने उसे खींचा। वह बेचारा विवश, चला गया।

[१०]

अफसर साहब ने गुस्से में कहा--यह फिर, चुप ?

सजनसिंह रो रहा है और चुप है।

'अरे, कुछ कहता भी है ?'

भरी हुई आँखें, विवशता और मूक मौन।

'अच्छा, दिल कब्जे में करले !'

अफसर का प्रस्थान। कुछ ठहरकर जुलेका का आगमन।

'सजन, मैं कितने दिन तुम्हारा इन्तज़ार करती रही !'

सजन चुप। क्षण बाद, एकाएक, जैसे चीख़ कर उसने कहा—वह इस वक्त मेरे मकान पर है।

मानों डंक पकड़ कर, झटके के साथ भीतर से खींच

निकालकर यह वाक्य जो बाहर हुआ है, वह जिगर को चीरता हुआ आया है।

जुलेका इस अप्रत्याशित जोर पर सहमकर, क्षण-इक स्तब्ध रह गई। फिर कहा—सजन, कैसे अच्छे हो तुम ! आओ, मेरे कमरे में चलो।

सजन, स्तम्भित, मन्त्र-मुग्ध उठ गया।

स्वर्ग के कमरे में।

'बैठो।' कुर्सी पर वह बैठ गया। सामने कोच पर अस्त-व्यस्त, निस्संकोच वह बैठ गई।

'क्या कहते थे ?—उसी शमशेर की बात कहो।'

बेचारे सजन से एक-एक बात कहलवा ली गई।

सुनने पर जुलेका बोली—तुम्हारा शमशेर बड़ा मूर्ख है !

सजन व्यथा से, प्यास से और लाज से बेसुध हो रहा।

अचानक अफ़सर का आगमन—

'कम्बख़्त ! कुत्ता ! हरामी !'

उसने आँख उठाकर देखा। जुलेका काफ़ूर ! तड़-से एक बेंत उसकी कनपटी को उधेड़ गया !

[११]

उसी खाट पर, वही शमशेर।

सामने आरक्त, अचंचल, सौदामिनी-सी, पूरी तनकर खड़ी हुई जुलेका।

फाँसी

'शमशेर, तुम गिरफ्तार होगे ?'

'हाँ ?'

'पुलिस आरही है।'

'आती होगी।'

'तुम्हें फाँसी लगेगी।'

'जानता हूँ।'

'बचना चाहते हो ?'

'कैसे ?'

'मैं बचा सकती हूँ।'

'सो तो जानता हूँ। पर क्यों बचा सकती हो ?'

'फाँसी से मुझे दहशत होती है। फाँसी बुरी चीज़ है।'

'जुलेका, मैं किस लिये, किसके लिये बचूँ ?'

'मेरा नाम !...तुम कौन हो ?...कैसे लेते हो ?...कैसे जानते हो...जी ?'

'अफसर की लड़की को न जानूँगा ? तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ। अब-तक नाम लेता रहा हूँ, क्या अब न लूँ ?'

'शमशेर, तुम ढीठ हो।'

'हो सकता है। पर तुम्हें जब छोटी देखा था, जुलेका कहा था। तब की लगी बान क्या सहज छूटती है ? तो भी, क्या चाहती हो, तुम्हें कहूँ ?'

'कुछ हो, तुम नाम न ले सकोगे।...तो तुम बचना नहीं चाहते ?'

'किसके लिये ?'

'तुम्हारा कोई नहीं ?'

'सब कोई, सब कुछ, मौत है।'

जुलेका—नहीं, शमशेर, मैं जुलेका हूँ। मैं मौत नहीं हूँ। मैं तुम्हें बचा सकती हूँ।...और, मैं मौत भी हूँ।

शमशेर—बचाने की ताक़त मुझ पर न ख़र्चो। मैं क्या लेकर बचूँ? बचूँ इसलिए कि किसी और को लेकर मरूँ? नहीं, जुलेका।

जुलेका—अच्छा, तुम जुलेका कहो। मैं नाराज़ नहीं हूँ। तुम कहो, मैं नाराज़ न हूँगी। तुम सब कुछ कह सकते हो। शमशेर तुम यह भी क्यों नहीं कह सकते कि मैं तुम्हें बचाऊँ? मुझ पर कोई नहीं है, और तुम बच जाओगे।...तुम क्यों मौत चाहते हो?

शमशेर—मैं वह तक भी नहीं चाहता।

जुलेका—नहीं, शमशेर, कुछ चाहो, किसी को चाहो। कुछ करो, पर चाहो। चाह ज़िंदगी है।

शमशेर—इसीलिए मेरे लिए मौत है।

जुलेका—मौत की बात मत करो। शमशेर, तुम जानते हो, मैं नहीं जानती। पर मैं कहती हूँ, तुम जिओ और जीतो।...अगर कोई नहीं है, जिसके लिए जिओ और जीतो, तो मैं...

शमशेर—ठहरो, जुलेका। मैं फाँसी के लिए जी रहा हूँ। क्या फाँसी के लिए हार जाऊँ ?

जुलेका—ओह, नहीं। तुम बड़े ख़राब हो...तुम्हें मालूम नहीं मैं जुलेका हूँ।...पर, तुम्हें मालूम है।...तुम किसी और के लिए कुछ नहीं कर सकते ? कहो, देखो,—किसी भी और के लिए ?

शमशेर—किसके लिए ?

जुलेका—कोई...किसी के लिए...

शमशेर—नहीं।

जुलेका—तो तुम मरोगे...

शमशेर—तैयार हूँ।

• • •

जुलेका के जाने के आध घण्टे-बाद बहुत से बन्दूकों और किरचों से सजे सिपाहियों ने आकर शमशेर को पकड़ लिया। पीछे फ़ेरिश साहब आये और अकड़ के साथ क़ैदी को गिरफ्तार करके चल दिये। कोई देखता, उनकी परकटी तितली-सी मूछों का एक-एक बाल खड़ा हो गया था।

[१२]

अवसर पाते-ही जुलेका ने पूछा—पापा, शमशेर गिरफ्तार हो गया ?

'और नहीं तो क्या बचता ?'

'पापा, कब से आप उसे जानते हैं ?'

'कोई दस बरस से।'

'कैसे पापा ?'

'उँह !'

'तो नहीं बताओगे ?'

'जुली, तू बड़ी जिद्दी है !'

'मैं जानूँगी।'

'कुछ बात भी हो ?'

'सुनानी होगी, पापा।'

'एक रोज मैं डाकुओं के चंगुल में पड़ गया। तुम भी साथ थीं। तब मैं थानेदार था; डाकुओं के लिये कीमती चीज़ था। कम्बख्त मुझे मार डालते। इतने में शमशेर उधर से निकला। वह उनका सरदार था। उसके हुक्म से उन्होंने हमें छोड़ दिया। जब-तक मैं चलने-लायक हुआ, तब-तक हम दोनों उसी के मेहमान रहे। आख़िर 'इन्सान का फ़र्ज', 'सरकार का हक़' और न जाने किस-किस बात पर, कितनी-कितनी सलाह देकर, उसने मुझे रुख़सत कर दिया। तभी से मैंने तै कर लिया, इसे पकड़ूँगा, तो मेरा बड़ा नाम होगा। कम्बख्त, भलेमानसों की-सी बातें करता है !'

[१३]

जेलखाने के अफ़सरों में भी और क़ैदियों में भी बड़ी चहल-पहल है। जेलखाने के बाहरी अहाते में बिल्कुल एक

तरफ एक पक्का चबूतरा है। ऊपर का हिस्सा लकड़ी का है। उसके दोनों तरफ चबूतरे से सात फ़ीट ऊँचे लोहे के दो शहतीर हैं। उनके सिरे पर एक और शहतीर चपटा पड़ा हुआ है। बीचों-बीच एक घिर्री लगी हुई है।

यह फाँसी है!

आज इस लोहे की फाँसी को साफ किया जा रहा है। क़ैदी हँस-हँस कर उसे माँज रहे हैं। क़ैदी से अधिक उसे कौन जानेगा? क़ैदी मेहनत से उसे साफ़ कर रहे हैं और हँस रहे हैं। आज उसका उपयोग होगा,—आज उसे साँप की तरह चमकना चाहिए।

थोड़ा-सा इसका नवीन इतिहास है। उस दिन राष्ट्र की धारा-सभा में फांसी का कौन-सा, कैसा यन्त्र उपयुक्त होगा, इसकी बहस चली थी। जो विधान न जानने वाले यह कहने को खड़े हुए थे, कि फाँसी का लोप हो जाना चाहिए, उन्हें 'पाइण्ट ऑव आर्डर' के नाम पर बैठा दिया गया था; यानी उनकी बात असंगत थी। फाँसी पर उनकी राय नहीं पूछी जा रही थी; वह तो जैसे पहले से-ही निर्णीत विषय है। फाँसी है, और रहेगी। प्रश्न उसके प्रकार का था। इस पर वहाँ बहुत ही भाव-पूर्ण, खोज-पूर्ण और ज्ञान-पूर्ण भाषण हुए थे। जान लेने में किसमें कम—किसमें ज्यादा देर लगती है; प्राण निकालने में कितनी देर लगाना दया के विरुद्ध नहीं है; फाँसी की पुरानी रीति क्या है, और नई

क्या-क्या है ; दोनों एक-दूसरे से क्यों अच्छी-बुरी हैं ; फाँसी की रीति में किस प्रकार विकास हुआ है ; और फिर यह कि कौन कम-ख़र्चीली है और कौन ज़्यादे !—क्योंकि सभ्य सरकारों में सबसे पहले और सबसे पीछे कोष की चिन्ता रहती है—आदि-आदि असंख्य दृष्टि-विन्दुओं से इस प्रश्न पर वहाँ विवेचन हुआ था।

उस विवेचन के परिणाम-स्वरूप जो फाँसी का सबसे उपयुक्त, लोम-हर्षी, मनहूस और भीषण रूप खड़ा है, आज उसी को घिस-घिसकर साफ़ किया जा रहा है।

हम कुछ नहीं कह सकते। देश के योग्यतम पुरुषों और प्रतिनिधियों के बहुमत के इस अनिन्द्य-सुन्दर परिणाम को देखकर हमें डर लगता है !

तो भी एक बात कहना चाहते हैं। वह यह कि फाँसी पाये हुए लोगों का भी एक प्रतिनिधि धारा-सभा में रहना चाहिये। वह—जिसने यंत्रकार के अनुभव और आईन-कार के तर्क से नहीं, वरन् फाँसी पर लटककर जान लिया हो, फाँसी किसे कहते हैं।

[१४]

जेल-सुपरिण्टेण्डेंट, जेलर, जल्लाद और कुछ ऊँचे अँग्रेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी फाँसी के निरीक्षण के लिये आये हैं।

जल्लाद चढ़कर रस्सी का फन्दा घिर्री में अटका देता है। रस्सी बिल्कुल नई है। हर-दफ़ा नई रस्सी काम में लाई जाती है। फन्दे में एक भारी बोरा लटकाया गया है।

यन्त्र घूमा! चबूतरे के फ़र्श के लकड़ी के तख़्ते नीचे झूल गये। बोरा नीचे-वाले अँधेरे कुएँ में लटक गया।

सबने एक-स्वर में कहा—ठीक है!

• • •

शमशेर के हाथ पीछे-से बँधे हैं। संगीनों के पहरे में वह लाया जा रहा है।

निरीक्षकों की संख्या में अब कुछ वृद्धि हो गई है। अँग्रेज और बहुत-से आ गये हैं। अँग्रेज और हिन्दुस्तानी पुरुषों की संख्या के बराबर अँग्रेज़-महिलाओं की संख्या है। इनमें एक हिन्दुस्तानी भी है—ज़ुली रिबेका (Zulie Rebecca), या ज़ुलेका।

दर्शकों में एक हमारा परिचित और है। वह कर्नल ग्रेटहार्ट। अन्तिम समय में वह आ मौजूद हुए हैं। बर्मा से वह शमशेर की हालत को बराबर ख़बर लेते रहते थे। उनके हाथ में कैमरा है।

शमशेर बिना मदद के चढ़ जाता है। न हँसता है, न रोता है; जैसे जो-कुछ हो रहा है, उससे सम्बन्ध-ही नहीं है; उसके दिल में जैसे कोई लड़ाई-ही नहीं हो रही है!

६

मेमें देखती हैं, और आपस में मज़ाक़ करती जाती हैं। अँग्रेज़ भी जैसे मज़ा ले रहे हैं!

ज़ुली ने जो एक बार शमशेर को देखा है, कि फिर नहीं देखा। वह कर्नल के पास आकर उससे बातें करने में लग गई। केवल एक व्यक्ति है, जो बँधी, निर्निमेष आँखों से शमशेर को देख रहा है।

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पूछा—तैयार हो शमशेर?

'जी हाँ।'

'आखिरी वक्त है। क्या कुछ चाहते हो?'

'थोड़ा-सा पानी चाहिये!'

'और कुछ नहीं?'

'नहीं।'

झपटकर ज़ुली चबूतरे के तख्ते पर पहुँच गई, और चिल्लाई—और कुछ नहीं?—शमशेर! और कुछ नहीं?...

'और क्या...ज़ुलेका?'

'और कुछ नहीं?...मरते-वक्त और कुछ नहीं?'

'नहीं—'

'थोड़ा-सा प्यार........'

'ज़ुलेका!—क्या कहती हो!'

'बिल्कुल ज़रा...ज़रा-सा प्यार...'

'छिः!'

'अच्छा, आख़िरी बात! उसका जवाब दे दो... तुमने ब्याह क्यों नहीं किया?'

'जुलेका, औपन्यासिक न बनो। इसमें कुछ नहीं है।'

जुलेका हार गई। वह बेहोश हो गई। उसे हटा दिया गया।

अँग्रेज़ों ने, मेमों ने, और सब ने इस घटना में बड़ा मज़ा लिया। और, कर्नल खड़े-खड़े एकटक देखते रहे।

पानी आया। शमशेर ने पी लिया।

जल्लाद ने फन्दा गले में डाला—कर्नल ने अपना कैमरा खोला।

कन्धे-तक आने-वाला काला खोल शमशेर को उढ़ाने की तैयारी हुई। उसने कहा—अगर कुछ हर्ज न हो, तो रहने दें।

क़ैदी का यह अनुनय मानने का अनुग्रह हुआ।

कर्नल ने एक 'स्नैपशॉट' (फ़ोटो) ले लिया।

शमशेर ने पूछा—कर्नल, मैं पास हो गया?

कर्नल के आँसू, जो न-जाने कब के निकलने न पाये थे, चुपचाप कोयों में आकर ढरक पड़े!

शमशेर ने कहा—कर्नल! ऐं, तुम 'फ़ेल' होते हो?

कर्नल को बड़ी शर्म आई और बड़ा रोना भी आया।

वही यन्त्र दबा। लकड़ी के तख्ते भूल गये। शमशेर गड़हे में लटक गया।

कहते हैं—लाश उस अँधेरे गड्हे में दो-दो तीन-तीन घण्टे-तक झूलती रहती है, तब उतरती है !

[१५]

जुलेका बदल गई है; पिघल कर पानी हो गई है, और वह पानी आँखों की राह निकलते-निकलते कभी ख़त्म नहीं होता।

अफ़सर लोग तत्परता से अफ़सरी निबाह रहे हैं।

सजनसिंह को धेला नहीं मिला है; सब-कुछ फ़ेरिश साहब और उनके दोस्तों की जेबों में पहुँचा है।

कर्नल ने नौकरी छोड़ दी है। हम उनके घर एक बार गये थे। फाँसी चढ़ते हुए शमशेर के फ़ोटो के सामने खड़े होकर वे कह रहे थे—

'शमशेर ! मैंने एक रोज़ तुम्हें मज़बूती का उपदेश दिया था। मैंने ! और तुम्हें !! मेरा वह कैसा दम्भ था !'

सुनकर हम ठहर न सके; लौट आये।

[१]

बेंजिलो के जी में एक बात उठी है—शायद बहुत दिनों से उठ रही है। इस समय मित्र से वह बात कहे बिना उससे रहा नहीं जा रहा है। इसीसे उसने पूछा—

तुम क्या बनना चाहते हो, गिडिटो ?

उत्तर में गिडिटो ने पूछा—

'और तुम ?'

उसके मन में जो आकांक्षा संचित हो रही है, अब वह वाणी में फुट ही जायगी। कहा—

'मैं ?—मैं नेपोलियन बनना चाहता हूँ।'

'नेपोलियन ! एकदम ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'नेपोलियन का जीवन मुझे बहुत प्यारा लगता है। कहाँ वह ख़ाक में से उठा, कहाँ आसमान के सिर पर चढ़ गया और कैसी सेंट हेलेना की सूनी-सी जगह मर गया ! वह एक शख्स था, जो अरमान लेकर नहीं मरा। जी की सारी हसरत उसने निकाल ली। राजमुकुटों को लात से उछालने के बाद, चौथाई सदी तक दुनिया को थर्रा रखने के बाद, क्या चिन्ता थी, वह कहाँ मरता है !—जेल में मरता है या अकेला मरता है। मनुष्यों में वह सम्राट् था। छोटा-सा आदमी था ; पर कितना विराट् था !'

'ठीक ! तो तुम नेपोलियन बनोगे ? क्या और कोई नहीं है, जो बिना अरमान मरा हो ?'

'तुम्हारा मतलब बुद्ध और ईसा से है ? मैं मानता हूँ, वे अरमानों को साथ लेकर नहीं मरे ; पर वे अरमान लेकर पैदा भी कहाँ हुए थे ?'

'तो क्या यह कुछ श्रेय की बात नहीं है ? आरंभ से ही अपनी हविस को नष्ट कर रखना, क्या हर एक का काम है ?'

'मुझे तो इसमें कुछ भी बहादुरी नहीं दीखती। क्या थोड़ी-बहुत हम सबको ही अपनी आकांक्षाओं पर मिट्टी नहीं डालनी पड़ती?'

'तो तुम्हें निश्चय है, इसमें तारीफ़ की बात नहीं है?'

'तारीफ़ की बात क्या है,—मुझे तो नहीं दीखती। तारीफ़ की बात तो इसमें है कि अपनी आकांक्षाओं को उन्मुक्त कर दिया जाय, उन्हें असंभव तक पहुँचने दिया जाय और फिर उसी असंभव को संभव कर दिखाया जाय। अपने सब अरमानों को भाग्य के मुँह पर पूरा करके दिखाकर, एक विराट् शक्ति के रूप को दुनिया की चकाचौंध के सामने स्तूपाकार—पर्वताकार—खड़ा करके, फिर उसे ठोकर मारकर, व्यक्ति एक विजन कोठरी में जीवन की शेष घड़ियाँ निरपेक्ष, निष्कांक्षी, कृतकृत्य होकर चुपचाप बिता दे और फिर मिट जाय,—मेरे निकट यह तारीफ़ की और यही आदर्श की बात है।'

'लेकिन फिर भी दुनिया बुद्ध की और ईसा की ज्यादा ऋणी है। नेपोलियन तो बीती वस्तु बन गया। वह आज हमारे लिए पढ़-पढ़कर स्तंभित होने भर के लिए है; लेकिन ये महापुरुष तो दुनिया में जीवित और अमर शक्तियाँ हैं...'

'जीवित और अमर शक्तियाँ नहीं हैं,—जीवित और अमर अशक्तियाँ हैं। व्यक्ति के जीवन में क्या तुम रोज़

नहीं देखते कि ये नाम उसे सशक्त तो क्या उल्टे अशक्त बना डालते हैं। यदि कभी इनके व्यक्तित्व शक्ति बनते हैं तो, इतिहास इस बात का साक्षी है, इससे घातक, विध्वंसिनी और आत्म-संहारक शक्ति कोई नहीं होती।... लेकिन तुम कहते क्या हो ? नेपोलियन पर जितना साहित्य निकला है, उतना और किसी एक व्यक्ति पर न निकला है,—न निकलेगा। न तुम्हारे बुद्ध पर, न ईसा पर।'

'मानता हूँ। और शायद तुम्हें मना नहीं सकता। तो तुम नेपोलियन बनोगे ?'

'जी में तो है। प्रार्थना भी है; लेकिन बनने का मार्ग अभी नहीं सूझता। फ्रांस में जैसी क्रांति मची, वैसी ही जब यहाँ भी मचे, वैसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हों, मुझे भी वैसे ही पक्के और साहसी आदमी मिलें,--तब तो ! पर, क्या यह सब कुछ मिलेगा ? मिले, तो मैं दिखा दूँ, कैसे नेपोलियन बना जाता है।'

'मुझे इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा; पर यार, एकदम सम्राट् बन गये तो, देखो, हमारी भी याद रखना। हमें भी कुछ बना-बना लेना।'—हँसकर गिडिटो ने कहा।

हँसकर ही बेंजिलो ने जवाब दिया—हाँ-हाँ, जरूर।

गिडिटो ने फिर जैसे पक्का वादा लेकर ही छोड़ा। मानों कल ही उसे नेपोलियन के बेंजिलो-संस्करण से अपना प्रार्थना-पत्र स्वीकार कराना होगा।

इसपर बेंज़िलो ने सोचा—कैसा वेचारा, गऊ आदमी है। सदा चुप-चुप अच्छा-अच्छा रहता है। और चाहता है, इस चुप्पी और इस छोटी गठरी-सी भलमनसी के ही इनाम में जब सम्राट् बनूँ, तो इसे भी कुछ बनालूँ। वेचारा है। जानता है, भलाई भी कुछ चीज़ है ; जब कि यह जानता ही नहीं कि शक्ति ही सब कुछ है।

इधर गिडिटो ने सोचा—दुर्भाग्य है कि परिस्थिति, आदमी, क्रांति, मार्ग, अवसर और कुछ भी इस दुनिया में बना-बनाया नहीं मिलता। सभी कुछ बनाना होता है। कैसा दुर्भाग्य है जगत का, कि केवल प्रकृति-नियम में इस ज़रा-सी भूल के कारण दुनिया को बेंज़ी नेपोलियन बनकर न दिखा सकेगा! मैं सचमुच विश्वास करता हूँ—अगर सब कुछ तैयार किया-कराया मिलता तो बेंज़ी अवश्य सम्राट् बन सकता था। इतनी क्षमता उसमें है,—पर अब...?

[२]

गिडिटो और बेंज़िलो दोनों कालेज में पढ़ते हैं। दोनों कार्बोनारी[1] के सदस्य हैं। समिति में दोनों का क्या-

---

१—'कार्बोनार' इटैलियन शब्द है, जिसका अर्थ 'पत्थर का कोयला जलानेवाला' होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में इस नाम से इटली और फ्राँस में अनेक राजनैतिक गुप्त समितियाँ बनी थीं, जिनका प्रभाव उस समय बहुत बढ़ गया था।

क्या स्थान है,—एक-दूसरा नहीं जानता। गिडिटो समिति की सबसे ऊँची तीन आदमियों की नायक-गोष्ठी का भी सदस्य है। समिति के और सदस्य इस गोष्ठी को नहीं जानते। बस उसके हुक्मनामों से उन्हें काम पड़ता है, व्यक्तियों से नहीं। इधर बेंज़िलो समिति के भीतर ही अपने लोगों का गुपचुप एक अलग गुट बना बैठा है। अधिकारियों को,—नायक-गोष्ठी को—उसका पता नहीं है; पर यह गुट भीतर-ही-भीतर प्रबल होता जा रहा है।

दोनों गहरे मित्र हैं; पर गहराई में बहुत नीचे उतर कर जैसे उन दोनों में विच्छेद हो गया है। वे अपने को एक-दूसरे में खो नहीं सके हैं,—और दोनों ही यह बात जानते हैं। दोनों के ही व्यक्तित्व में, हृदय में और, मस्तिष्क में एक-एक कोना है, जो दूसरे के लिए अगम्य है। दोनों ही उस कोने के द्वार पर टक्करें मारते हैं, पर प्रवेश नहीं कर पाते।

इन दोनों मित्रों में एक और सम्बन्ध है। उम्र में दोनों लगभग बराबर हैं; पर गिडिटो जैसे बेंज़िलो के लिए अपने को जिम्मेदार समझता है। बेंज़िलो समिति का आग-भरा सदस्य है। गिडिटो, जिसमें आग-वाग कुछ नहीं दीखती, इसका ध्यान रखता है कि कहीं उसका मित्र खुद ही अपनी आग में न पड़ जाय! वह मानों मित्र का अभिभावक बन गया है। उसके खाने-पीने, पहिरने-ओढ़ने की आवश्यकताओं को देखते और पूरी करते रहना उसने

अपना दायित्व बना लिया है। बेंज़िलो को खुद जैसे अपनी ख़बर रखनी ही नहीं चाहिए। बेंज़िलो मित्र की इन सेवाओं को सहज स्वीकार कर लेता है। उसे मानो अपने मित्र के अहसानों का पता भी नहीं लगने पाता। वह मित्र के भोलेपन पर थोड़ी दया करता है। इधर गिडिटो अपने वयस्क मित्र की लापरवाहियों को देखकर खुश होता और थोड़ा चिंतित भी होता है।

दोनों क्रांतिवादी हैं; पर बेंज़िलो जैसे क्रांति का तर्क है। तर्क की ही तरह वह सीधा जाता है, और तर्क के समान टक्कर लेना और तोड़-फोड़ करना ही उसका काम है। और जैसे तर्क परिणाम के भले-बुरे की चिन्ता नहीं करता, जैसे तर्क केवल अपनी गति और दिशा से ताल्लुक रखता है, वैसे ही बेंज़िलो है।

लेकिन गिडिटो जैसे क्रांति की फ़िलासफ़ी है। फ़िलासफ़ी की तरह वह सोच-विचार कर चारों तरफ़ देख-समझकर चलता है। फ़िलासफ़ी की तरह वह पूर्ण है, उसी की तरह गंभीर। क्रांति में अशान्ति रह सकती है, उसके परिणाम में भी हिंसा रह सकती है,—पर उसकी फ़िलासफ़ी में शांति-ही-शांति है। हिंसा से फ़िलासफ़ी डरती नहीं है, उसके निकट वह खुद शान्ति का साधन बन जाती है। वैसे ही गिडिटो खून से भय नहीं खाता; पर लहू की नदियाँ देखकर भी उसकी शान्ति के स्वप्न भंग नहीं होते!

लेकिन फ़िलासफ़ी तर्क का पोषण करती है। तर्क जैसे उसका उच्छृंखल हठी बालक है।

बेंज़िलो नेपोलियन बनना चाहता है। गिडिटो, गिडिटो ही बना रहना चाहता है। उसने अपना आदर्श किसी ऐतिहासिक पुरुष में बन्द नहीं किया है। वह अपना आदर्श अपने ही भीतर गढ़ता रहता है, और अपने को उसके अनरूप गढ़ता रहता है। वह गिडिटो ही बन कर अपने जीवन की सार्थकता ढूँढ़ेगा। नेपोलियन के नाम की प्रभा उधार लेकर वह अपने व्यक्तित्व को सबल, सार्थक और सम्पूर्ण बना सकेगा, ऐसा उसका विश्वास नहीं है।

[३]

छोटा-सा कमरा है। बीचों-बीच अनगढ़ मेज़ है दर्वाज़े की ओर मुँह किए हुए मेज़ के किनारे एक ऊँची कुर्सी है। तीन तरफ़ तीन और साधारण कुर्सियाँ हैं।

एक तरफ़ इटली का बड़ा नक़शा टँगा है। आले में कुछ बोतल और गिलास रक्खे हैं। एक कोने में एक ख़ाली स्टूल है। और कुछ नहीं है। कमरा तीसरी मंज़िल पर है।

केवल तीन व्यक्ति बैठे हैं—गिडिटो, एंटिनो, लारेंज़ो।

ला०—गिडिटो, अपना आसन स्वीकार करें।

एंटिनो चुप रहा। गिडिटो चुपचाप उस ऊँची कुर्सी पर आ बैठा।

सब ने जेब से अपनी-अपनी नोटबुक निकालीं।

गि०—एलबर्ट पाँच दिन पहले हममें था; आज वह पीडमोंट की गद्दी पर है। उसके सिर पर ताज रखते ही हमारे दो खास आदमी गिरफ्तार किये गये हैं। सोचना होगा, कि हमें अब अपनी प्रगति क्या रखनी है।

एं०—वह भगोड़ा है। उसकी वही सज़ा होनी चाहिए।

ला०—सज़ा बोलने से कुछ नहीं होता। सज़ा पूरी नहीं की जा सकती।

एं०—क्यों ?

ला०—वह हमसे आगाह है। फिर सारी फौज और पुलिस उसकी पुश्त पर है।

एं०—फौज और पुलिस हमारे मार्ग से हमें हटा सकती है तो हमें मर जाना चाहिए।

ला०—मस्लहत भी कोई चीज़ है।

एं०—कमज़ोरी है!

गिडिटो ने तब कहा—सम्भव है किसी की समझ में अपने इटैलियन भाई को मारना ठीक हो; पर इस बारे में जल्दी नहीं करनी होगी। हम पीडमोंट के संरक्षण में इटली का ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ों में बँटे हुए हैं। उन टुकड़ों की शक्ति आपस में ही क्षीण हो जाती है; इसीलिये आस्ट्रियन के लिये हमारी देशभूमि रौंदना सम्भव है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियन के खिलाफ है

और इसलिये पहला काम हमारा इटली को एक राष्ट्र, एक आवाज और एक शक्ति बना देना है। यह काम पीडमोंट की गद्दी को तहस-नहस कर डालने से नहीं होगा। उसको ज्यादा-से-ज्याद मज़बूत,—हाँ, उदार—बनाने से होगा। एलबर्ट, हो सकता है, हमारा शत्रु हो; पर उस-जितना भी उदार राजा मिलना असम्भव है। हम उसे मार नहीं सकते। उसकी सहायता हमें करनी होगी,—और अपने लिये भी प्राप्त करनी होगी; क्योंकि हमें अपनी शत्रुता-मित्रता नहीं देखनी,—देश का हित देखना है।

एं०—किसी राजा के नीचे इटली का ऐक्य सम्पन्न करने की इच्छा दुःस्वप्न मात्र है। हम राज-सत्ता नहीं चाहते। हम उसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते। हम प्रजा-सत्ता चाहते हैं। राज-सत्ता के इतने कड़ुवे अनुभव के बाद हम यह कभी सम्भव नहीं समझ सकते कि उससे प्रजा-सत्ता कायम करने में मदद मिलेगी,—वैसे ही जैसे आग से सर्दी पाने की उम्मीद नहीं कर सकते। हमारा कोड हमें एक और स्पष्ट आज्ञा देता है। वही आज्ञा पुरुषत्व की और मैं समझता हूँ—बुद्धिमत्ता की भी है।

गि०—मैं बहस नहीं करता। लारेंज़ो भाई की राय मैं जानना चाहता हूँ।

ला०—मुझे डर है कि हत्या हितकारी नहीं होगी। इससे मेरी राय नहीं है।

गि०—भाई एंटिनों, अब मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि समिति हत्या के पक्ष में न रहेगी। बहुमत यही है।

एं०—बहुमत को सिर झुकाता हूँ। पर एक सूचना अध्यक्ष को देना चाहता हूँ—

एक पन्ना उलट कर एंटिनो पढ़ना शुरू करता है—

'सोमवार ता० १९ मार्च को सभा हुई। उपस्थिति १०।

बेंजिलो, सभापति।

'भाषणों के बाद, सर्व-सम्मति से, तै पाया कि अलबर्ट को अपना सदस्य स्वीकार करना घोर अपराध था। अब वह पीडमोंट का राजा बन गया है। राजा खासकर वह, जो आस्ट्रियन की अधीनता स्वीकार करता है, प्रजा-सत्ता का दुश्मन है; इसलिये वह हमारा भी दुश्मन है। हमारी अक्षम्य गलती के प्रतिशोध और प्रजासत्ता एवं क्रान्ति की हित-रक्षा का एक उपाय है, वह है अलबर्ट को नष्ट करना।

'सम्मति जब ली गई तो केवल से०—विरोध में था।

'उसके लिये कई कानों दबी हुई, 'ट्रेटर' (विश्वास-घातक) की आवाज़ आई।

'सबको शान्त करके बेंज़िलों ने घोषणा की कि एल-बर्ट की हत्या सभा-द्वारा निर्णीत और उचित ठहराई गई।'

एं०—इस सूचना के साथ मैं अध्यक्ष को अपने निर्णय पर फिर से विचारने का निवेदन करता हूँ।

गि०·—मेरा वही मत है जो मैं दे चुका। और समिति का भी वही मत है। बेंज़िलो ने अधिकार से बाहर की बात की है। किसी दुराग्रह को बढ़ने देना ठीक नहीं है। एंटिनो भाई से मैं यह आशा करता हूँ कि वह बेंजिलो को नायक का मत,—और निर्णय,— स्पष्ट शब्दों में सुना देंगे।

एंटिनो खड़ा हो गया। एक गिलास खींचा, कुछ शराब उसमें उडेली, फिर अपनी कुर्सी के पास आकर, पतलून की जेब में एक हाथ डाल कर बोला—किन्तु मैं कहता हूँ, बँट जाकर हम गिरेंगे, एक रहने में हमारी विजय है। हम में फूट पड़े, इससे कहीं अच्छा यह है कि हम अपने सिद्धान्तों में तनिक अवकाश रखना सीखें, और अपने मत को बहुत तंग और बहुत अन्तिम न बना दें।

यह कह कर एंटिनो ने गिलास ओठ से लगा लिया।

गिडिटो एकटक अपने सामने देखता रहा, बोला नहीं।

लारेंज़ो ने जवाब दिया—अनुशासन एक चीज़ है। उसमें ढील आई कि संगठन भी ढीला हुआ। हमें ऐसा ऐक्य चाहिए जो हमारे कर्तृत्व को पुष्ट करे। कर्तृत्व को खोकर मेल बढ़ाने से हम न बढ़ेंगे। हमें विभिन्नता का ऐक्य न चाहिए। हमें एकता का ऐक्य चाहिए। हमारा मत एक हो, काम एक हो, लगन एक हो। और इसका नाम है शक्ति। हमें वही चाहिए, और हम उसे कड़ाई से अनुशासन में बाँध रखेंगे, बिखरने न देंगे।...

इतना कहकर लारेंजो ने भी अपना गिलास सँभाला।

एंटिनों ने कहा—हम खबरदार रहें कि हम अपने ऊपर बहुत ज्यादा ज़िम्मा न ले लें। मतैक्य असम्भव है। जिस राह से यह सम्भव है, उसका नाम है बालात्कार, दमन, निरंकुश एकतंत्रता। क्या हम छत्र-तंत्रता को मिटाकर स्व-तंत्रता को धरती पर ला देने के व्रती होकर ही यहाँ नहीं जमा हुए? फिर क्यों हम ही अपने बीच निरंकुश एक-तन्त्रता-सी खड़ी कर रहे हैं?

गिडिटो ने स्थिर भाव से कहा—क्या हम बहस ही करें? क्या हम निर्णय न करें? निर्णय तो करना ही होगा। दायित्व से डरना कापुरुषता है। निर्णय एक ही तरह का होगा! केवल निर्णय-हीनता ही है, जिसमें किसी को असंतोष न हो; निर्णय में विरोध अनिवार्य है। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना ही तो भला है, हम निर्णय न करें। सबको सब कुछ मानने और सब कुछ करने देना था, तो भला था, हम समिति न बनाते, आडबर न करते, सीधी तरह घर बैठते; लेकिन नहीं, एक बार, एक जगह, एक शपथ के नीचे हम इकट्ठे हुए। तो अपनी जो कुछ मानने और जो-कुछ करने की स्वतंत्रता का होम कर इकट्ठे हुए। अपने को मिटाकर आज यहाँ हम जमा हैं। इसलिये हमारी अपनी स्वतंत्रता कुछ नहीं है। आज देश की स्वतंत्रता पर हमने अपनी स्वतंत्रता को वारा है, धन्य

होकर वारा है और इस तरह एक प्रकार की परतंत्रता को अपने ऊपर स्वीकार कर एक वृहत स्वतंत्रता को हमने अपने लिये पहचाना और अपनाया है।...अब, हम क्या निर्णय करें ? निर्णय का बोझ हम अपूर्ण प्राणियों के ऊपर पड़ा है, तो क्या हम उसे कंधे पर से फेंक कर चलते बनें ? जानता हूँ, बोझ भारी है। पर, फेंककर भागना भी नहीं हो सकेगा। अपनी परिमित बुद्धि के अनुसार ही हम फ़ैसला करेंगे, और अपने को दी गई शक्ति के अनुसार उसे पूरा भी करेंगे। पर हम सतर्क रहें उसमें हमारा अपना कुछ न हो, अहंकार की गंध न हो, प्रभाव न हो, मोह न हो। ठीक का ठेका कौन ले सकता है ; पर इतना कर चुकने पर, हमारा निर्णय गलत होगा, तो मानो हम उसकी गलती से अलिप्त रहेंगे। पर, चूँकि हमारे निर्णय के अंततः गलत होने की संभावना असंभव नहीं है, इसलिये हम निर्णय करने की ज़िम्मेदारी से ही छूटें, यह नहीं हो सकता।...और, जहाँ तक मेरी गति है, वहाँ तक देखकर मैं कहता हूँ कि बेंज़िलो ने जो किया है वह करके भूल ही की है ; तब, यह देखने और मानने के बाद उस भूल को बढ़ा देना हमारे लिये किसी प्रकार भी क्षम्य और संभव न होगा।

ऐंटिनो ने उत्तर न दिया, वह शराब ढालता रहा। लारेंजो भी इसी में व्यस्त हो रहा।

गिडिटो खड़ा हो गया, नक़शे के सामने आ रहा

और उसे आँख गाड़कर देखता रहा, देखता रहा। मानों बेंज़िलो के भाग्य को उस नक़शे में से पढ़ लेना चाहता था।

[४]

संध्या हो गई है। कमरे में गिडिटो अकेला है। वह प्रतीक्षा में है—कालेज चार घंटों का खत्म हो चुका, बेंजिलो अब तक कहाँ रहा ? लौटा नहीं ! खाना ठंढा हो रहा है। कमरे के छज्जे पर आकर उसने सड़क के दोनों तरफ आँख फैला कर देखा। बेंज़िलो का कहीं पता नहीं !

वह आकर पलंग पर बैठ गया। किताब खोल ली; लेकिन पाँच ही मिनट में किताब बन्द कर देनी पड़ी। किताब के अक्षर जैसे तैरने लगते थे; उसका मन जैसे भागा-भागा फिरता था।

लैंडलेडी को बुलाया; कहा—खाना परोसने की अभी जरूरत नहीं; लेकिन तैयार रहना चाहिए। इतना कहकर जो हाथ पड़ा वही टोप ले, पिस्तौल जेब में डाल बाहर आ निकला और मैरिथ के यहाँ पहुँचा।

मैरिथ वह है, जो यदि गिडिटो न होता तो बेंज़िलो की विवाहिता होती। बेंज़िलो रोज़ इसके यहाँ आता है और चला जाता है। मैरिथ अपने धनी माँ-बाप को छोड़कर यहाँ अपने बल और अपने काम पर अकेली रहती है—और अपने दिन की राह देखती रहती है।

वह कुलीन है, और अपनी कुलीनता पर लज्जित है। सुन्दर है, और अपने सौन्दर्य को रूखा रखती है। कुलीनता के सम्बन्ध में वह अपने को बिल्कुल उदासीन नहीं बना सकी है, और सौंदर्य के बारे में सर्वथा अजानकार नहीं है। वह अपने से तंग है। वह पुरुष हो रहना चाहती है, क्योंकि वह स्त्री है। उसकी वृत्ति जोखम ढूँढ़ती है। समिति की वह अत्यन्त तत्पर सदस्या है। उसे चैन नहीं है, इसलिये वह सदा उद्यत और गतिशील है। निम्नता में आकर्षण खोजती है; क्योंकि निम्नता में उसे प्रीति नहीं है; क्योंकि वह निम्न नहीं है। वह घर ही पढ़ी है, और ललित कला में उसने विशेष अभिरुचि पाई है। संगीत सीखा है, और चित्र बनाए हैं। ताज़े और हरे अपने स्वर-पर्ण के दोने बनाकर, उसमें अपने भीतर का सुर्ख दर्द बूँद-बूँद खींच कर, भरकर रख दे कि किसी के ओठ उसे चखें—वय पाकर भूली-भटकी एकाकी घड़ियां में यह भी उसने किया है; पर यौवन जब प्रमत्त था और स्वीकृति चाहता था और भीतर लहू की बूँद-बूँद मानों अपना रंग देखने के लिये मचल रही थी, तभी विधि ने उसकी अजेयता पर एक ठेस पहुँचाई। तभी क्रान्ति का कठोर कर्म-सन्देश उसे सुन पड़ा। उसने अपनी तूलिका तोड़ दी, वायलिन फेंक दी, और देश की स्वतंत्रता के अर्थ मरने के लिये जीने के इरादे से अपने खाली मन को भर कर वह रहने लगी।

ऐसे ही समय बेंज़िलो पथ-प्रदर्शक बन कर उसके जीवन में आ मिला। बेंज़िलो ने उसके इरादे के सामने कर्म को राह खोलकर मानो बिछा दी। यहाँ चलना ही चलना है। यहाँ करते रहना है, और मरते रहना है। अपने को याद करते हुए रहने की बात यहाँ नहीं है; अपने को सर्वशः भूलकर यहाँ रहना होगा। जीवन इतना थोड़ा है कि मौत के कामों को पूरा करते रहने के उसके कर्तव्य में से निकाल कर एक भी अवकाश का क्षण जीवन को अपने लिये नहीं दिया जा सकता!

और उसका परमात्मा जानता है, वह यही माँगती है। वह यही माँगती है। वह एक भी क्षण नहीं चाहती। चाहती है, एक क्षण भी उसे न मिले। एक भी क्षण उससे कैसे उठाया जायगा? क्योंकि उसका क्षण उसका युग है। और उसकी तूलिका टूट चुकी है, और वायलिन फिंक चुकी है—अब वह उस क्षण का क्या बनायेगी?

वह अपना मन, प्राण और समय किसी पर डालकर ही तो जी सकती है; क्योंकि वह क्या रह गई है जो कुछ अपने पास रख सके? किसी के लिये जीना चाहती थी—जब वह खो गया है तो वह अब मौत के लिये जियेगी और देश के लिये मरेगी।

इसलिये—'इंक़लाब ज़िंदाबाद'। वह सबसे अपने को तोड़ इन्क़लाब के लिये रहेगी; इस अनुष्ठान में बेंज़िलो से

दीक्षा का ऋण लेगी और उससे उऋण होने में लगी रहेगी। क्रान्ति पर अपना जीवन वारेगी। देश पर अपने को भूल जायगी !

और कुछ ही दिनों बाद, अपने घर से अलग इस स्थान पर उसने अपने को समिति में और समिति के काम में पाया।

पर, हाय !

यहाँ भी गिडिटो...

[५]

गिडिटो ने कहा—मैरिथ, बेंजी अभी घर नहीं पहुँचा ! क्या यहाँ भी नहीं आया ?

मैरिथ—नहीं, यहाँ तो नहीं आया। पर तुम आओ, बैठो। शायद आता हो।

'बैठने की फुर्सत तो कम है।'

'क्यों जी, बेंज़िलो को अपने हाथ में रखने से क्या तुम्हारी मुट्ठी पूरी भर जाती है ? क्या उसमें और किसी के लिये समाई नहीं है ?'

'मैरिथ, बेंजी ने अपना सारा प्यार तुम पर वार दिया है। इटली को स्वतंत्र होने दो ; देखो मैं खुद अपने हाथों तुम्हारा व्याह करूँगा। उससे पहिले व्याह करके बेंजी अपना नाश कर लेगा। मैरिथ, वह नेपोलियन बनना चाहता है—नेपोलियन !'

'और, क्यों जी, तुम क्या बनोगे ? तुमने अपना प्यार किसी पर वार रक्खा है ?'

'सो तुम नहीं जानतीं ?—नेपोलियन पर !'

'तुम भी आदमी हो !'

'कौन कहता है ? मैं स्त्री होता तो ज्यादा ठीक रहता। ...अच्छा अब मैं चला।'

'तनिक ठहरो तो। बेंजी आना ही चाहता होगा ! इतने, थोड़ा आतिथ्य ही स्वीकार कर लो।'

'अच्छा लाओ, पाँच मिनट बैठता हूँ। लाओ क्या देती हो ?'

'नहीं, उतावले मत बनो। लेकिन हाँ, तुम शराब तो पीते ही नहीं।'

मैरिथ ने कुछ रूखे बिस्कुट ला रक्खे। बिस्कुट की जल्दी-जल्दी में नक़्क़ाशीदार चीनी की एक बढ़ियाँ तश्तरी गिरकर फूट गई। दो-तीन बिस्कुट भी गिरकर चूर हो गए। बिस्कुट रख कर मिनट-भर में पड़ोसी से टोस्ट और चाय ले आई।

सब कुछ चखकर गिडिटो ने घड़ी की तरफ देखकर कहा—ओह ! अब तो जाना ही होगा। क्षमा।—कहकर प्रतीक्षा नहीं की ; उठकर सीधा चल दिया।

'ठहरो तो,...अरे, ठहरो...अच्छा बस, पाँच मिनट।'

'अब नहीं मैरिथ, देखो बना तो फिर आऊँगा।'

गिडिटो नहीं ठहरा। ज़ीने पर उतरते-उतरते उसने मन में कहा—मुग्धा मैरिथ !

[६]

गिडिटो फिर सड़क और गली, गली और सड़क लाँघता हुआ एक अँधेरी गली में जा पहुँचा। और वहाँ से फिर उस कमरे में जहाँ सभा जुड़ी हुई थी। बेंज़िलो अध्यक्षासन पर तमतमा रहा था।

गिडिटो जब वहाँ दाखिल हुआ तो सभा एकदम रुक गई। अयाचित उसका पहुँचना शायद वांछनीय न था।

अध्यक्षासन पर से बेंज़िलो ने कहा—गिडिटो, किस-को इजाज़त से तुम अन्दर आए ?

'बेंजी, चलो खाना ठंढा हो रहा है। पहले खा लो, तब और कुछ करना।'

'गिडिटो, बेवकूफ मत बनो। कैसे तुम यहाँ घुस आए ?'

'इन्तजार करते-करते। नहीं तो रात-भर बैठा रहता क्या ? भूख लगी, तुम्हें ढूँढ़ता-ढाँढ़ता चला आया।'

'भाड़ में जाय तुम्हारी भूख। मैं ज़रूरी काम कर रहा हूँ।'

'कोई ज़रूरी काम नहीं है। अभी तो तुम्हारा खाना सबसे ज़रूरी है।'

'गिडिटो, मैं प्रेसीडेंट हूँ। कहता हूँ तुम अभी चले जाओ।'

'तुम्हें कुछ ख़याल भी है ? कालेज खत्म हुए पाँच घंटे हो चुके ! तब से भूखे हो, कुछ नहीं खाया। तुम्हें भूखे छोड़ कर मैं कैसे चला जाऊँ ?'

'गिडिटो, बेवकूफी करोगे तो सख्ती करनी पड़ेगी।'

'करो सख़्ती, कौन मना करता है। पर परमात्मा के लिये भूखे मत रहो।'

बेंज़िलो ने झल्लाकर कहा—बेंजमिन, गिडिटो को हम यहाँ नहीं चाहते। तुम उसे बाहर निकाल सकते हो ?

बेंजमिन नाम का व्यक्ति उठा। उठकर देखा और फिर बैठ गया—जी नहीं।

'नहीं !'—अध्यक्ष ने कहा,—'कोई है जो इसे बाहर कर दे ?'

दो व्यक्ति आगे बढ़े। वह काफ़ी पास आ गए कि गिडिटो ने रिवाल्वर उनकी तरफ तानकर कहा—चलो, लौट जाओ अपनी जगह पर ! खबरदार, जो कदम भी आगे रक्खा।

फिर बेंजिलो के पास पहुँच कर और उसकी बाँह पकड़ कर कहा—चलो बेंजी, तमाशा न करो। घर चलो।

बेंज़िलो ने उसे ज़ोर से धकिया दिया। गिडिटो गिरते-गिरते बचा। इतने में ही सभा के दो-तीन सदस्य उसकी

तरफ लपके। उसने भीतर की जेब से एक तिरंगा कपड़े का टुकड़ा निकाला और दोनों हाथों से ऊपर उठाकर चिल्लाया—सभ्यो, यह देखो। देखकर चाहो तो गोली मार दो,—मेरे दोनों हाथ ऊपर हैं। नहीं तो उसका सम्मान रक्खो और इस सभा को बरख़ास्त कर दो।

सभ्य, जो बड़े असभ्य हो रहे थे, अब सबके सब सुन्न बैठ गये।

'सुनो! नायक की आज्ञा है, यह सभा यहीं बर्खास्त होती है। मेरे तीन कहते-कहते सब यहाँ से चले जायँ। ए...क। दो...।...'

कमरा बिलकुल ख़ाली था।

गिडिटो ने अब बेंजिलो से कहा—चलो बेंजी, खाना खाने चलें।

बेंज़िलो भौचक था। पूछा—तो नायक तुम हो?

'हूँ तो हूँ,—पर चलो, भूख लग रही है।'

'कहाँ चलूँ?'

'घर।'

'मैरिथ के यहाँ नहीं?'

'वहाँ चाहो, वहाँ जाओ।'

'तुम न चलोगे?'

'मैं अभी वहीं से आया था।'

'मैरिथ के यहाँ से आए थे?'

'हाँ।'

'अब न जाओगे?'

'नहीं।'

'घर पर मिलोगे ?'

'जरूर।'

'मैं घर पर न आया तो?'

'तो बुरा होगा।'

'क्या होगा?'

'बहुत बुरा होगा।'

'तो मैं घर पर न आ सकूँगा।'

'न आ सकोगे?—कहाँ रहोगे?'

'सो बतलाने की जरूरत नहीं।'

'तो मैं भी साथ चलता हूँ।'

दोनों साथ मैरिथ के स्थान की ओर चले।

मैरिथ के घर पर—

बें०—मैरिथ, तुम्हें पता है हमारे नायक गिडिटो महाशय हैं?

मैरिथ को यह पता न था; पर यह पता था कि बेंज़िलो नायक के प्रति बहुत सद्भावना नहीं रखता। नायक के नरमपन, ढीलेपन और सुस्ती पर बेंज़ो अपने तीक्ष्ण-कटु विचार मैरिथ के सामने कई बार उत्तेजना के साथ प्रकट कर चुका था। इसलिए जब गिडिटो के नायक होने का

सूचना उसे मिली, तो वह प्रसन्न न हो सकी। न जाने क्यों, उल्टी पीली पड़ गई। उसने आतंक से गिडिटो की ओर देखा। इस दृष्टि में भरे प्रश्न को अच्छी तरह न समझ कर उसने कहा—नायक कितना भोला भलामानस है, यह तुम शायद जानते ही नहीं ?

बेंज़िलो ने कहा—मैं खूब जानता हूँ। उसके भोलेपन पर मैरिथ के सामने कई बार तरस खा चुका हूँ।

इस पर मैरिथ फिर दहल-सी उठी। कुछ लेने गई तो गिडिटो के कान में कह गई—'खबरदार रहना।' लौटकर आई तो गिडिटो ने कहा—बेंज़ो, क्या नेपोलियन से ख़बरदार रहना होगा ?

बेंज़िलो ने उत्तर दिया—नेपोलियन खुद अपने को नहीं जानता। लेकिन ख़बरदार रहना अच्छा ही है।

काफ़ी रात बीते वे अपने डेरे को चले। पर रास्ते में ही न जाने कब, बेंज़िलो बे-पता हो गया।

[७]

रात अँधेरी है, सुनसान है। पतलून की दोनों जेब में पिस्तौल है। बेंज़िलो महल के दरवाजे तक आ गया है। दरवाज़े पर संतरी टहल-टहल कर पहरा दे रहा है।

बेंज़िलो के आने पर संतरी ने सलाम किया।

'सब ठीक है ?'

'बिलकुल।'

'उसी कमरे में?'

'हाँ।'

रास्ते में जितने मिले उनमें से किसी का अभिवादन लेकर, किसी को फुसलाकर, कुछ को डरा-धमकाकर और बाक़ी बचे दो-एक को ठंडा करके बेंज़िलो, उस कमरे के दरवाज़े पर आ गया। कमरा प्रकाशित था। एलबर्ट अकेला रहता था, अभी तक उसने व्याह न किया था।

बेंज़िलो ने केवल झँपे हुए दरवाज़े को खोलकर कहा—आ सकता हूँ?

उत्तर मिला—आइए।

उत्तर सुनने-न-सुनने की पर्वाह किये बिना वह अंदर दाखिल हो गया।

एलबर्ट इतनी रात गए भी एक कुर्सी पर बैठा था। सामने छोटी-सी मेज़ थी। उस पर कुछ कागज़ एक रंग-बिरंगे बहुत बड़े शंख से दबे हुए थे। पास ही एक ऊँचे स्टूल पर शेडदार लैम्प था, जो अच्छा खुशनुमा था; पर राजाओं के लायक़ बिलकुल न था। एलबर्ट का सिर अपने दोनों हाथों में थमा हुआ था। एक कोहनी मेज़ पर रक्खी थी, दूसरी कुर्सी की बाँह पर। उसके माथे पर बल थे। ऐसे बैठे-ही-बैठे अनायास हो उसने 'आइए' कहा था।

आगत व्यक्ति को जब उसने देखा, तो वह बिलकुल

बदल गया। हाथ दोनों कुर्सी की बाहों पर आराम करने लगे। सिर सीधा हो गया, और वह थोड़ा हँसा।

'ओहो, बेंज़िलो हैं !—मैं तो तुम्हें भूला जा रहा था।'

'मैं भूलने दूँ तब न !'

'यह भी ठीक है। आज शाम को मुझे ख़बर मिली थी कि आप रात को दर्शन देंगे ; पर अभी-अभी तो मुझे इसका ध्यान उतर ही गया था।'

'आपकी ख़बर ठीक थी। क्या इसके आगे और कुछ ख़बर भी थी ?'

'उसे मैं आपसे जानने की आशा रखता हूँ।'

'आशा तो आप गलत नहीं रखते।'

'तो आज्ञा हो मेरे लिए—'

'एलवर्ट, अभी जल्दी काहे की है ? तुम्हें जल्दी हो तो बात दूसरी।'

'बड़ा संतोष है कि आपको जल्दी नहीं। नहीं तो जल्दी आपके मिज़ाज में एक ख़ास चीज़ है। फिर निश्चय के बाद देरी का कारण भी क्या ?'

'एलबर्ट, मालूम होता है, तुम अपने भाग्य से परिचित हो। शायद समझते हो, प्रयत्न करने से भाग्य तो टलेगा नहीं, इसीलिए इस तरह यहाँ निश्चिंत बैठे हो। पर भाग्य को तुम्हारे प्रयत्नों की या निश्चिन्तता की कुछ भी पर्वाह नहीं।'

'बेंज़िलो, तुम जानते हो, मैं भाग्य में विश्वास करता

नहीं ; पर अब मालूम होता है, जैसे उसे मानना अच्छा है। मुझे भी विश्वास होता जा रहा है,—होनहार टलता नहीं।'

'जाने दो, इन बातों को। तुम आज राजा हो, कल हमारे साथ मिलकर राजा की दुश्मनी का दम भरते थे! यह क्या धोखा नहीं है,—और तुम इस पर दुख नहीं करते ?'

'यही तो मुश्किल है, कि अफसोस मैं नहीं कर पाता। धोखा-वोखा मैं जानता नहीं ; लेकिन मालूम होता है, इस तरह इटली के लिए मैं शायद कुछ कर सकूँ।'

'एलबर्ट, तुम्हें शरम नहीं आती ? राजा बने बैठे हो, जब कि सैकड़ों-हज़ारों तुम्हारे साथी तुम्हारी ही जेलों में सड़-गल रहे हैं। तुम्हारे देशवासी गुलामी और दरिद्रता के नीचे कुचले जा रहे हैं, तब तुम ऐशो-इशरत में पड़े हो, और आस्ट्रियन के जूते के नीचे अपने उन भाइयों पर हुकूमत चलाते हो ?'

'भाई, लाज आती ही नहीं, तो क्या करूँ ? मैं उसे ज़बरदस्ती बुलाने की आवश्यकता नहीं समझता। आज इस कुर्सी पर से सब देश-सेवकों को नहीं, तो कुछ को तो मैं जेल से छुड़ा ही सकता हूँ ; पर तुम क्या कर सके हो, क्या कर सकते हो ?...और यह कुर्सी महल में तो रक्खी है ; पर खूब देख लो, बिलकुल मामूली है। क्या आधी रात तक ऐसी कुर्सी पर जागते बैठना तुम्हारी निगाह में

पाप है ? और तुम यह नहीं जानते कि हुकूमत करने वालों को अपने सिर पर का जूता ज्यादा खलता है। क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि आस्ट्रियन मुझसे जितना डरते हैं,—तुमसे उतना नहीं।'

'तुम आज गद्दी के मोह में पड़ कर इटली को बेच रहे हो।'

'शायद।'

'तुम यह नहीं समझते ?'

'अभी तक नहीं।'

'लेकिन तुमको समझने के लिए ज्यादा वक्त नहीं दिया जा सकता।'

'ठीक है, मैं पहले ही काफ़ी ले चुका हूँ।'

'लेकिन तुम्हें अपना अधिकार है, राष्ट्र को खो देने का नहीं।'

'राष्ट्र को न समझने का जैसा तुम्हें अधिकार है, वैसा मुझे भी तो उसे समझने का अधिकार है।'

'हम इसको बर्दाश्त नहीं कर सकते।'

'बर्दाश्त की आदत पैदा करनी चाहिए।'

'वह आदत अभी पैदा करने का वक्त नहीं है। अभी समय है कि अपनी गति पर पछताओ, लजाओ, और पीछे मुड़ो।'

'नहीं तो ?'

'...नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। हम अपने देश का नाश नहीं देख सकते।'

'बेशक तुम अपने देश का नाश या लाभ नहीं देख सकते।'

'जो हो, अब वक्त कम है। बोलो क्षमा,—या दंड।'

'तुम्हें ऐसा अधिकार किसने दिया ?'

'समझो कि पहली घड़ी से जीवन की अन्तिम घड़ी तक एक—बस एक—राष्ट्र की चिन्ता रखने वाले तरुणों ने।'

'तो उनसे कहो, उन्होंने भूल की। ऐसा अधिकार परमात्मा के हाथ से छीनने की आवश्यकता नहीं।'

'खैर, हुआ'—इस भाव से और इस ध्वनि से बेंजिलो ने कहा—'बोलो, क्षमा या दण्ड ?'

'दंड या पुरस्कार, जो भी होगा जरूर मिलेगा; पर क्षमा!...क्षमा नहीं।'

'क्षमा नहीं?...'

यह कहकर उसने जेब में हाथ डाल दिया। एलबर्ट ने सब कुछ देखा। वह भी देखा, जो बेंजिलो नहीं देख पा रहा था। बोला—बेंजिलो, एलबर्ट में सीजर का खून है, और इटली का देश-प्रेम है। क्षमा नहीं।

'नहीं?—तो लो।'

यह कहा और पिस्तौल खींच ली। इतने में ही किसी ने कस कर बाँह को पकड़ लिया। घोड़ा दबा। गोली शेड

और लैम्प को चूर-चूर करती हुई निकल गई। रोशनी बुझ गई। गुप्प-अन्धेरा हो गया।

गिडिटो ने पिस्तौल बेंज़िलो के हाथ से छीन कर फेंक दी। वह झनझनाकर फ़र्श पर पड़ी।

कुछ भी न दीख पड़ रहा था। बेंज़िलो ने कहा—'कौन है? अलग हट जाओ, नहीं तो सिर फोड़ दूँगा।' इतना कह कर दूसरी जेब में उसने हाथ डाल दिया।

गिडिटो ने एक ज़ोर की चपत उसकी कनपटी पर जड़ दी।

'कम्बख्त।—यहाँ आया है मरने। चल घर, चल भाग।'

जब चलने और भागने में देर लगी तो कान पकड़ कर उसे ढकेलते हुए कहा—अरे भागता है या नहीं? भाग जा झटपट, नहीं तो मर जायगा।

इतने में ही एक गोली सनसनाती हुई गिडिटो की बाँह को आर-पार कर गई और बेंज़िलो भाग गया।

• • •

शोर मचाकर जब नौकर-चाकर सिपाही-प्यादे इकट्ठे-के-इकट्ठे वहाँ हाज़िर हुए और रोशनी की, तो गिडिटो बाँह पकड़े जहाँ का तहाँ खड़ा था, और एलबर्ट कुरसी पर वहीं का वहीं पिस्तौल ताने बैठा था।

गिडिटो पकड़ लिया गया।

फाँसी

बेंज़िलो बेतहाशा घबड़ाया-सा दौड़कर जब सदर दर्वाजे के बाहर आया, तो किसी ने पुकारा —बेंज़ो !

देखा कि सामने मैरिथ चिन्ता-व्यग्र खड़ी है। मैरिथ ने पूछा— बेंजो, गिडिटो कहाँ है ?

'गिडिटो ?'

बेंजिलो की घबराहट मैरिथ से छिपी न रह सकी। उसने जोर देकर कहा—हाँ, गिडिटो।

'वह तो मुझे अन्दर नहीं मिला।'

'अन्दर नहीं मिला !'

'मुझे नहीं मालूम।'

उसने चिल्लाकर पूछा—नहीं मालूम ?

'नहीं !...लेकिन तुम इस वक्त यहाँ कहाँ घूम रही हो। चलो घर चलें।'

'गिडिटो रात-रात भर तुम्हारी तलाश में घूमे,—और तुम्हें अब चैन की सूझे। ऐसे ही हो तुम ?...सच बताओ गिडिटो कहाँ है ?'

'मुझे कैसे मालूम ?'

'यहीं ख़त्म हो जाओगे।—बोलो, नहीं मालूम ?'

बेंज़िलो ने देखा, पिस्तौल सीधी उसके मुँह की तरफ़ तनी है, मैरिथ की आँखों में जैसे वज्र-काठिन्य जल रहा है। वह खुद निहत्था था, दूसरा पिस्तौल भी वहीं छूट गया था। उसने कहा—मालूम होता है, मैंने उसे गोली मार दी है।

मैरिथ इस पर एक चीख़ छोड़ कर और रिवाल्वर बेंज़िलो के ऊपर फेंक कर अन्दर भाग गई। वह भरी पिस्तौल छूटी नहीं, उसके बदन से लगकर धरती पर गिर पड़ी।

बेंज़िलो ने उसे उठा लिया।

• • •

अन्दर जाकर मैरिथ ने देखा, गिडिटो को कई रक्षक हथकड़ी डाले लिये जा रहे हैं। वह बाँह को कसकर पकड़े है। उसने जब मैरिथ को देखा, तो कहा—मैरिथ! तुम यहाँ कहाँ? बेंजी तो तुम्हें याद कर रहा था। जाओ, उसको देख-भाल करना। कहीं वह रो-रोकर मर न जाय।

मैरिथ गई नहीं, वह वहीं खड़ी देखती रही।

'धित्, यह क्या आँखें फाड़ रही हो।...जैसे बेंजी मैं ही हूँ। चलो, जाओ, बेंजी को ढूँढ़ कर उसे सांत्वना दो।'

वह फिर भी नहीं गई।

'मैरिथ, देखो नहीं जाओगी तुम?'

मैरिथ चुपचाप चली गई।

[८]

गिडिटो के ख़िलाफ़ प्रमाण संगीन थे। वह रात को महाराज के कमरे में पाया गया है। बाँह में गोली का घाव है। जेब में एक पिस्तौल मिली है। इतना होने पर भी वह

छूट गया। एलबर्ट का इस सम्बन्ध में खास आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था।

घर पर आकर उसने देखा, बेंज़िलो का सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। उसके दिल में एक अज्ञात आशंका घर कर बैठी। वह मैरिथ के पास गया। बेंजी वहाँ न था। गिडिटो ने डाँटा; मैरिथ ने अपनी कर्त्तव्यपरता जताते हुए, क्षमा माँग कर कह दिया—मैंने बहुतेरा ढूँढ़ा, मुझे वह नहीं मिला।

गिडिटो ने कहा—और ढूँढ़ो, मैरिथ! जब तक न मिले, तब तक ढूँढ़ो।

'ढूँढूँगी तो; पर तुम भी कहीं खो न जाना।'

'मैं नहीं खोऊँगा,—पर उसे तो पाना ही होगा।'

'जो कहोगे, सो करूँगी; लेकिन कहे देती हूँ, वह बहुत जीता न रहेगा।'

'यह तो मैं भी जानता हूँ; लेकिन ऐसे रूठ कर तो वह न जाने पायगा।'

'गिडिटो, तुम ऐसे-ऐसे क्यों हो रहे हो?'

'मैं कुछ भी नहीं हो रहा। मैं यह सोच रहा हूँ कि बेंजी के अब नेपोलियन बनने का अन्त आ गया है। मेरे पास बहुत सुख था; अब मेरा सुख का आधार छिन जायगा। और, मैरिथ तुम्हारा सोहाग...'

'ठहरो गिडिटो! मेरे सोहाग की तुम चिन्ता करते होते

तो क्या बात थी ? मैं जानती हूँ, मुझे अपने सोहाग का अर्घ्य किसकी वेदी पर चढ़ाना होगा। वह देवता स्वीकार करें या तिरस्कार कर दें, अर्घ्य तो समर्पण के ही लिए होता है।'

'तो मैं तुम्हारे बेंजी को ढूँढ़ने जाता हूँ।'

कहकर वह चल दिया। मैरिथ ने सुना-सुना कर कहा—जाओगे तो हो ही। मेरे कहने से रुकने वाले तुम थोड़े ही हो।

[६]

गिडिटो के कमरे में—

गि०—छिः, बेंजी, इस तरह भागा करते हैं !

बे०—तुम बार-बार इतने बड़े क्यों बनते हो ? मुझे इस पर बहुत खीझ उठती है।

गि०—मैं बड़ा बनता हूँ ! बोलो, कहो तो तुम्हारे जूते साफ कर दूँ।

बे०—तुमने मुझे थप्पड़ क्यों मारा था ?

गिडिटो ने यह नहीं कहा कि थप्पड़ गोली से बहुत छोटा है। उसने कहा—'बस यही बात है ? तो यह लो, जितने चाहो मेरी पीठ पर जमाओ।'—यह कह कर बेंजी के पास एक बेंत रख दी।

'गिडिटो, तुम बड़े होशियार हो ; लेकिन में तुम्हें बड़ा मानूँगा ही नहीं।'

'तुम तो हो पागल। मुझे बड़ा मानो या छोटा मानो। बला से, कुछ भी मानो ; पर अपना मानो।'

'जितनी ही ऐसी बात कहोगे, उतना हो मैं तुम्हें दुश्मन समझूँगा।'

'अच्छा, दुश्मन ही समझो ; लेकिन अब मैरिथ के पास जाओ। वह याद कर रही थी। नहा-धो लो और कपड़े बदल लो। कैसे मैले हो रहे हो !'

वेंजिलो मन से चाहे कुछ भी कहे ; पर ऐसी बातों में उसका गुजारा होता है गिडिटो की आज्ञाओं पर ही। वह स्नान के लिये चला गया।

गिडिटो ने इतने में एक नया साफ सूट निकाल रक्खा। लौटने पर ठीक-ठीक करके उसे मैरिथ के पास रवाना कर दिया।

मैरिथ के घर का दरवाजा बन्द था। उसने नौकरनी को आज्ञा दी थी, कि जो आये, पहले उसे सूचना दी जाय। बेंजिलो ने दरवाजा खटखटाया, नौकरनी मैरिथ के पास पहुँची। पूछा गया—कौन है ?

'बेंजिलो।'

'उनसे क्षमा माँगकर कहना, मेरे मस्तक में बड़ी पीड़ा है। अभी न मिल सकूँगी। फिर पधारें।'

नौकरनी के मुँह से जब उसने यह सुना, घड़ों पानी उस पर गिर गया। उसने सोचा—'गिडिटो ने मुझे यहाँ

तक बेवकूफ बनाया ! उसकी यह हिम्मत !'—घर जाकर सीधा पलंग पर पड़ गया। गिडिटो अनुपस्थित था।

[१०]

इधर गिडिटो नायक-गोष्ठी में आया है। वही कमरा, वे ही लोग।

लारेंज़ो—बेंज़िलो का अपराध अक्षम्य है।

एंटिनो—मैं मानता हूँ, समिति के नियमों के अनुसार उसने बहुत बड़ा अपराध किया है ; किन्तु नियमों में संशोधन की बहुत आवश्यकता है, उनमें जकड़े रहने की इतनी आवश्यकता नहीं है।

ला०—नियम नियम हैं और जब तक वे बदल नहीं जाते, तब तक उनका उल्लंघन सर्वथा दण्डनीय है।

गिडिटो—अपराध गुरुतम हो, तो वह हमेशा विचारणीय है। इसके विचार और फैसले के लिये एक की बुद्धि पर निर्भर रहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मैं तीन आदमियों की दण्ड-समिति को इसका भार सौंप देना चाहता हूँ।... भाई एंटिनो की क्या राय है ?

एं०—अपराधी के हित की रक्षा में यह सबसे उत्तम उपाय है।

गि०—भाई लारेंज़ो ?

ला०—न्याय-सिद्धि की इसमें पूर्ण आशा है।

गि०—मैरिथ, सिपियो, गैरिबाल्डी,—इन तीनों की दण्ड-समिति होगी। भाई एंटिनो अभियुक्त के पक्ष की ओर से वकील होंगे; भाई लारेंज़ो अभियोग की ओर से। मैं इससे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।

एं०—नायक को अपनी ज़िम्मेदारी से बचने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

ला०—मेरा प्रस्ताव है कि दण्ड-समिति का फैसला नायक के हस्ताक्षर के बाद प्रामाणिक हो।

एं०—बिलकुल ठीक।

गि०—आप लोग छोड़ेंगे नहीं। बड़ी अनिच्छा से यह भार भी मुझे अपने सिर लेना होता है। भाई एंटिनो इसका ध्यान रक्खें कि अभियुक्त को सूचना न हो। सबसे इस सम्बन्ध में समानता, बन्धुता और प्रजातंत्र के नाम पर, इटली के मान-चित्र की छत्र-छाया में शपथ ले ली जाय।...सबको ध्यान रहे, परमात्मा की एक विभूति को, एक परमात्म-खंड को, मारने या जीवित रहने देने का भार उनपर है।

[११]

घर पर गिडिटो आया तो बेंज़िलो आँखें मूँदे सो रहा था। इस समय इस चेहरे में, जिसके झरोखे झँप रहे थे, कैसा मनोमुग्धकारी भाव था! न गुस्सा था, न स्नेह

था, न हास्य था, न कुछ था। बस, एक अमूल्य बालपन था, एक भोली स्वाभाविकता थी। उसे मालूम पड़ा, जैसे इस सौन्दर्य का यह अन्तिम क्षण है।

वह सामने कुर्सी लाकर बैठ गया। बेंज़िलो के बाल उसके माथे पर आ रहे थे। उसने उन्हें पीछे को सरका दिया। वह फिर वहीं आ गिरे। उसने फिर सरका दिया। अबकी तीसरी बार उसने नहीं सरकाये। तीन-चार हिले-मिले बालों की इस उद्दण्ड लट को वह देखता रह गया। कैसे सुनहरे-सुनहरे बाल थे। और सबके सब तो सिर पर अच्छी तरह लेटे थे, यही लट कैसी हठ करके उसके माथे के आगे आ-आ पड़ती थी।

गिडिटो ने उस लट के अगले सिरे को कैंची से काट लिया। फिर बाल के वे तन्हें-से टुकड़े उसने दराज़ से एक लाकेट निकाल कर उसमें बन्द कर दिये।

फिर अलग जाकर वह अपनी किताब पढ़ने लगा। लेकिन कौन जानता है, वह बेचारी किताब कैसी क्या पढ़ी गई!

[१२]

गिडिटो और बेंज़िलो शतरंज खेल रहे हैं। गिडिटो हार पर हार रहा है, फिर भी जैसे हारना चाहता है। आज वह जैसे दिन-भर हरएक से हारता रहना चाहता है।

बेंज़िलो, बेचारा बालक, झल्ला रहा है। इस शतरंज के वक्त वह सब कुछ भूल जाता है। मात जरा-जरा-सी देर में हो रही है—इस पर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है।

'गिडिटो, क्या हो रहा है ? यहाँ चलोगे तो बुरी शह लगेगी।'

'अरे, हाँ !'

....

'अच्छा, यह लो, मात हो गई !'

'अच्छा, बेंज़ी, अबके लो, मिनटों में मैं तुम्हें मात कर देता हूँ।'

'मात क्या ख़ाक दोगे ?'

'ख़ाक-वाक मत चाहो जी, मात दूँगा—मात ! चारों खाने मात !'

'अच्छा।'

खेलना शुरू हुआ ही था कि सिपियो कमरे में दाख़िल हुआ। गिडिटो पीला पड़ गया। बेंज़ी आगे की चाल सोच रहा था। गिडिटो ने कहा—

'बेंज़ी तुम नहाये नहीं ! घंटों से शतरंज ही होती रही। इसे यों ही बिछी रहने दो। जाओ नहा आओ।'

'मैं कहता हूँ, तुमसे क़यामत तक मात न हो।'—बेंज़ी ने कहा।

'अच्छा नहा के आओ, फिर देखना।'

उसके चले जाने पर सिपियो ने फ़ौजी सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा निकालकर पेश किया। गिडिटो ने फ़ौरन उसे खोल लिया। लिखा था·—

बेंज़िलो ने—

अ. नियम-विरुद्ध, नायक-गोष्ठी को बिना सूचना और आज्ञा के अलग दल बनाना प्रारम्भ किया।

आ. समिति की नीति के ख़िलाफ़, नायक की स्पष्ट आज्ञा को तोड़कर, एलबर्ट की हत्या का प्रयत्न किया।

इ. इस प्रकार निरंकुशता और आज्ञोल्लंघन की प्रवृत्ति बढ़ाई।

ई. नायक को ख़तरे में डाला।

इसलिए—

प्राणदण्ड।

इसके नीचे तीनों जजों के हस्ताक्षर थे। नीचे एक और नोट था—

'मैरिथ दण्ड की पूर्ति का भार खुद उठाना चाहती है। इसके स्वीकार करने में हम कोई आपत्ति नहीं देखते।'

इसके नीचे सिपियो और गैरीबाल्डी के हस्ताक्षर थे।

गिडिटो ने अभियोगों में (ई) का वाक्य काट दिया और अपने हस्ताक्षर कर दिये। सिपियो चला गया।

• • •

बेंज़िलो लौटा तो गिडिटो ने कहा—शतरञ्ज बन्द करो। आओ कुछ खायें-पियें।

'लैन्डलेडी' को बहुत ज़बर्दस्त आर्डर दे दिया गया। कई तरह की शराबें और सब-कुछ प्रस्तुत हो गया।

'गिडिटो, तुम शराब पीओगे ?'—बेंज़िलो ने पूछा।

'हाँ-हाँ, सुनते हैं, इसमें बड़े गुण हैं।'—गिडिटो ने जवाब दिया।

दोनों ने जितना हो सका खाया और जितनी समा सकी शराब पी। फिर दोनों बदहाश सो गये।

[१३]

स्मैरिथ की आयोजना से शनिवार के रोज़ झील का सैर के लिये जाने का निश्चय हुआ है।

खाने का सब सामान साथ है। आज गिडिटो बिलकुल पीला पड़ा हुआ है; लेकिन हद से ज्यादा प्रसन्न मालूम होता है। दो-तीन घण्टे झील में किश्तियों से सैर हुई। इस सारे काल में एक मिनिट भी तो वह शायद ही चुप रहा है। दुनिया-भर के किस्से-कहानियाँ, चुहलबाज़ियाँ उसे सूझ रही हैं। घड़ी घड़ी पर उसे शराब की आवश्यकता पड़ती है।

बेंज़िलो इन बातों से झल्ला रहा है। बड़ी पैनी दृष्टि

से वह इन बातों को देख रहा है, और फिर-फिर कर मैरिथ की ओर देख लेता है।

मैरिथ चित्र-सरीखा अपना एक जैसा चेहरा लेकर सब हँसी-खुशी में भाग ले रही है। क्या प्रलय उसके भीतर मच रही है,—कौन है, जो उसे जान सकता है ? न मालूम वह आज अपनी क़ब्र खोदने जा रही है या मुक्ति पाने जा रही है !

झील के उस पार जंगल में अब आ गये हैं। गिडिटो ने कहा—बेंज़ी, देखो, हँसोगे नहीं तो मैं गुदगुदी मचा दूँगा।

'क्या आज ही हँस लोगे ?'

'और नहीं तो क्या रोज़-रोज़ हँसना मिलेगा ?'

'ठीक है, शायद रोज़-रोज़ नहीं मिलेगा।'

'बेंज़ो, इस जंगल में कोई हमारी आवाज़ नहीं सुनेगा। आओ, खूब हँस लें, फिर इकट्ठे रो लेंगे।'

'गिडिटो, तुम आज बिलकुल जानवर जान पड़ते हो।'

'जान पड़ता हूँ ! बस ! अरे, तुम्हें मालूम नहीं, मैं हूँ ही जानवर ! लेकिन, कहता हूँ, रोज़-रोज़ नहीं रहूँगा।'

गिडिटो ने बहुत शराब पी ली थी। वह अब ऊटपटाँग बक रहा था। मैरिथ ने कहा—बेंज़ो इधर आओ। उन्हें अब आराम करने दो।

बेंज़िलो ने यह सुना, गिडिटो के आराम के प्रति मैरिथ

की व्यग्र चिन्ता और उत्कण्ठा देखी, गिडिटो को देखा और फिरकर अपनी ओर देखती हुई मैरिथ को देखा, और 'आता हूँ' कहकर गिडिटो पर पिस्तौल तान दी। पर छोड़े-ही-छोड़े कि एक गोली उसकी छाती में लगी। वह ढह पड़ा। उसकी गोली हवा में सन्-सन् करती हुई चली निकल गई।

बेंज़िलो कुछ भी बोल न सका। बात-की-बात में निष्प्राण हो गया। गिडिटो ने आगे बढ़कर, उसी जिद्दी बालों की लट को हटाकर, बेंज़ी के माथे पर एक चुम्बन ले लिया। कहा—मैरिथ, अब उसे उठाओगी नहीं ?

मैरिथ डर रही थी, गिडिटो न जाने क्या हो रहा था !

[१४]

चर्च के घेरे की जमीन में एक बहुत गहरा गड्ढा खोद-कर बेंज़ी की लाश उसमें रक्खी गई। फावड़े से गीली-गीली मिट्टी उस पर डाली गई। ८ फीट ऊँची ४ फीट चौड़ी और ८ फीट लम्बी वह जगह मिट्टी से ऊपर तक भर दी गई।

समिति के सब सदस्य आये थे, और अब चले गये। किसी ने उस पर एक आँसू नहीं बहाया।

गिडिटो मुँह लटकाये खड़ा था—जैसे उसकी आँखों में का पानी और बदन में का खून सब सूख गया है।

बस, मैरिथ रो रही थी । बेचारे मृत बेंज़ी के लिए नहीं ; किन्तु बेचारे जीवित गिडिटो के लिए ।

सबके चले जाने पर गिडिटो ने आगे बढ़कर उस क़ब्र पर ताज़ी-ताज़ी पड़ी हुई मिट्टी का एक चुम्बन ले लिया । पास से एक फल को तोड़कर उसके सिरहाने रख दिया और गर्दन लटकाये हुए एक तरफ़ को बढ़ चला ।

मैरिथ पीछे लपकी—चिल्लाई—

'गिडिटो !'

'हाँ'—यह हाँ जैसे उसी क़ब्र में से निकल रही थी ।

'कहाँ जाते हो ?'

'घर ।'

'मेरे यहाँ नहीं ?'

'नहीं ।'

मैरिथ भी इस पर वैसा ही मुँह लटकाए दूसरी तरफ़ चल दी ।